समकालीन हिन्दी कविता में भारत की सांस्कृतिक अस्मिता की तलाश

(सन् १९८० से २००० तक के विशेष सन्दर्भ में)

SEARCH FOR THE CULTURAL IDENTITY OF INDIA IN CONTEMPORARY HINDI POETRY

(with special reference to 1980-2000)

कालिकट विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में
डॉक्टर ऑफ़ फिलोसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध

THESIS

submitted to the University of Calicut for the

Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI

मार्गनिर्देशकः
डॉ. प्रमोद कोव्वप्रत
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

प्रस्तुतकर्ताः
प्रदीप राज पी.
शोध छात्र

हिन्दी विभाग
कालिटक विश्वविद्यालय

2017

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis **SEARCH FOR THE CULTURAL IDENTITY OF INDIA IN CONTEMPORARY HINDI POETRY (WITH SPECIAL REFERENCE TO 1980-2000)** submitted for the award of the degree of Doctor of Philosophy of the University of Calicut is a record of bonafide research carried out by **Mr. PRADEEP RAJ P.**, under my supervision. No part of thesis has been submitted for the award any degree before.

Place: C.U Campus
Date :

Dr. PRAMOD KOVVAPRATH
Professor & Head
Department of Hindi
University of Calicut

DECLARATION

I Pradeep Raj P., hereby declare that the thesis **SEARCH FOR THE CULTURAL IDENTITY OF INDIA IN CONTEMPORARY HINDI POETRY (WITH SPECIAL REFERENCE TO 1980-2000)** is a bonafide record of research work done by me and that it has not previously formed the basis for the award of any other degrees.

Place: C.U Campus
Date :

PRADEEP RAJ P.
Research Scholar
Department of Hindi
University of Calicut

अनुक्रमणिका

पृ.सं

अध्याय 1 भारतीय संस्कृति और अस्मिता 1 – 35

1.1 संस्कृति
1.2 संस्कृति की अवधारणा
1.3 भारतीय संस्कृति
1.4 भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ
1.4.1 प्राचीनता
1.4.2 समन्वयशीलता
1.4.3 सहिष्णुता
1.4.4 ग्रहणशीलता
1.4.5 अध्यात्मिकता
1.4.6 गत्यात्मकता
1.4.7 विश्व - कल्याण की भावना
1.4.8 अहिंसा
1.4.9 परोपकारपरायणता
1.4.10 त्याग भावना
1.4.11 सदाचार पालन
1.4.12 सर्वांगीणता
1.4.13 धर्मनिरपेक्षता
1.5 भारतीय संस्कृतिः मूल्य-संबन्धी विश्लेषण
1.6 भारतीय संस्कृतिः परंपरा - संबन्धी विश्लेषण
1.6.1 हिन्दू धर्म
1.6.2 जैन धर्म
1.6.3 बौद्ध धर्म
1.6.4 पारसी धर्म
1.6.5 ईसाई धर्म
1.6.6 इस्लाम धर्म
1.6.7 सिक्ख धर्म
1.7 भारतीय संस्कृतिः इतिहास - संबन्धी विश्लेषण
1.7.1 सिंधू - घाटी की सभ्यता
1.7.2 आर्यों का आगमन

1.7.3 आर्य और द्रविड संस्कृति
1.7.4 वैदिक संस्कृति
1.7.5 मुगलों का आगमन
1.7.6 अंग्रेज़ों का आगमन
1.8 अस्मिता का स्वरूप
1.9 निष्कर्ष

अध्याय 2 भारत का सांस्कृतिक परिवेश: सन् १९८० के बाद 36 – 60

2.1 सामाजिक परिस्थिति और अस्मिता
2.2 आर्थिक परिस्थिति और अस्मिता
2.3 राजनीतिक परिस्थिति और अस्मिता
2.4 सांस्कृतिक परिस्थिति और अस्मिता
2.5 निष्कर्ष

अध्याय 3 हिन्दी कविता सन् १९८० तक : प्रमुख प्रवृत्तियाँ 61 – 141

3.1 आदिकालीन हिन्दी कविता
3.1.1 आदिकालीन रचनाएँ एवं उनकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ
3.1.1 रासो साहित्य
3.1.1.2 जैन, नाथ एवं सिद्ध साहित्य
3.1.1.2.1 सिद्ध साहित्य
3.1.1.2.2 जैन साहित्य
3.1.1.2.3 नाथ साहित्य
3.1.1.3 श्रृंगार एवं मनोरंजन का साहित्य
3.2 भक्तिकालीन हिन्दी कविता
3.2.1 निर्गुण काव्यधारा
3.2.2 सगुण काव्यधारा
3.2.3 प्रेम मार्गी सूफी काव्यधारा
3.3 रीतिकालीन हिन्दी कविता
3.3.1 रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियाँ
3.4 आधुनिक हिन्दी कविता
3.4.1 भारतेन्दु युगीन काव्य
3.4.1.1 देश- प्रेम
3.4.1.2 भक्ति- भावना
3.4.1.3 हास्य - व्यंग्य

3.4.1.4 सामाजिक जागरण
3.4.1.5 प्रकृति चित्रण
3.4.1.6 भाषा- प्रेम
3.4.1.7 जनकाव्य
3.4.2 द्विवेदी युगीन काव्य
3.4.2.1 राष्ट्रीयता की भावना
3.4.2.2 मानवतावादी दृष्टि का उन्मेष
3.4.2.3 स्वाधीनता हेतु संघर्ष की भावना
3.4.2.4 बौद्धिकता का प्रबल प्रदर्शन
3.4.2.5 प्रकृति चित्रण
3.4.2.6 हास्य -व्यंग्य की परंपरा
3.4.2.7 छंद - वैविध्य
3.4.2.8 भक्ति भावना
3.4.2.9 समाजोत्थान की भावना
3.4.2.10 श्रृंगारी भावना
3.4.2.11 नारी चित्रण
3.4.3 छायावाद
3.4.3.1 छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ
3.4.3.1.1 सर्वात्मवादी भावना
3.4.3.1.2 आध्यात्मिक चेतना
3.4.3.1.3 जनतांत्रिक चेतना
3.4.3.1.4 वैयक्तिक चेतना
3.4.3.1.5 मानव और प्रकृति का सह- संबन्ध
3.4.3.1.6 नारी सौन्दर्य
3.4.3.1.7 प्रकृति- प्रेम
3.4.3.1.8 प्रेम और सौन्दर्य चेतना
3.4.3.1.9 कल्पना की प्रचुरता
3.4.3.1.10 काव्य - संवेदना
3.4.3.1.11 विद्रोह की भावना
3.4.3.1.12 शिल्प पक्ष
3.4.4 प्रगतिवाद
3.4.4.1 प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ

3.4.4.1.1 सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि
3.4.4.1.2 वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष
3.4.4.1.3 शोषक - शोषित वर्ग विभाजन
3.4.4.1.4 शोषित जनता की करुण दशा का चित्रण
3.4.4.1.5 राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रेम की भावना
3.4.4.1.6 स्वस्थ प्रेमाभिव्यक्ति का दर्शन
3.4.4.1.7 नवजागरण एवं विद्रोह की भावना
3.4.4.1.8 वर्गहीन समाज की स्थापना के पक्षधर
3.4.4.1.9 नारी के प्रति नया दृष्टिकोण
3.4.4.1.10 मानव की शक्ति में विश्वास
3.4.4.1.11 धर्म, भाग्य एवं ईश्वर के प्रति अनास्था
3.4.4.1.12 सोवियत रूस और साम्यवादी शासन व्यवस्था का समर्थन
3.4.4.1.13 अनाचार, भ्रष्टाचार के विरोध में विद्रोह व शक्ति प्रयोग का समर्थन
3.4.4.1.14 भाषा एवं शिल्प
3.4.5. प्रयोगवाद
3.4.5.1 प्रयोगवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ
3.4.5.1.1 अहंवाद
3.4.5.1.2 बौद्धिकता
3.4.5.1.3 जटिल संवेदनाएँ
3.4.5.1.4 मानवतावादी दृष्टिकोण
3.4.5.1.5 पीडा बोध
3.4.5.1.6 ह्रसोन्मुख मध्यवर्ग का चित्रण
3.4.5.1.7 नगर बोध और नगर सभ्यता का चित्रण
3.4.5.1.8 सौन्दर्य एवं प्रेम
3.4.5.1.9 भाषा एवं शिल्प
3.4.6 नई कविता
3.4.6.1 नई कविता की प्रवृत्तियाँ
3.4.6.1.1 टूटन और यन्त्रणा
3.4.6.1.2 यान्त्रिकता, अमानवीयता, अकेलापन
3.4.6.1.3 अस्तित्व की पहचान और व्यक्तिवाद

3.4.6.1.4 लघुमानव
3.4.6.1.5 आधुनिक भावबोध
3.4.6.1.6 क्षण का महत्व
3.4.6.1.7 वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष
3.4.6.1.8 प्रकृति चित्रण
3.4.6.1.9 अनुभूति की प्रामाणिकता
3.4.6.1.10 अहंवाद
3.4.6.1.11 अनास्था, निराशा एवं कुंठा की भावना
3.4.6.1.12 समष्टिभाव का चित्रण
3.4.6.1.13 व्यंग्य
3.4.6.1.14 लोक संस्कृति एवं ग्रामीण जन जीवन
3.4.6.1.15 पौराणिक संदर्भ
3.4.6.1.16 भाषा एवं शिल्प
3.4.6.1.16.1 बिंब
3.4.6.1.16.2 प्रतीक
3.4.6.1.16.3 अलंकार
3.4.7 साठोत्तरी कविता
3.4.7.1 साठोत्तरी काव्य की प्रवृत्तियाँ
3.4.7.1.1 भय, आतंक की उपस्थिति अथवा संत्रास
3.4.7.1.2 व्यवस्था की अव्यवस्था के प्रति आक्रोश
3.4.7.1.3 अव्यवस्था के उत्तरादायी राजनीतिज्ञों के प्रति आक्रोश
3.4.7.1.4 स्वाभिमान नष्ट होने की कचोट
3.4.7.1.5 पूर्ण मोहभंग की स्थिति
3.4.7.1.6 विद्रोह और क्रांति की भावना
3.4.7.1.7 भाषा के प्रति नये तेवर
3.4.7.1.8 गद्यात्मकता की प्रचुरता
3.4.7.1.9 कथ्य में सपाटबयानी
3.4.7.1.10 विविध विषयों एवं भाषाओं से ग्रहीत शब्द भंण्डार
3.4.7.1.11 यौन संदर्भों से संबन्धित अश्लीलता
3.4.7.1.12 परिवेश से जुडी हुई सांकेतिकता
3.4.7.1.13 बिबं, प्रतीक और छंद
3.4.8 सत्तरोत्तरी कविता

3.4.8.1 सत्तरोत्तरी कविता की प्रवृत्तियाँ
3.4.8.1.1. राजनैतिक यथार्थ का पर्दाफाश
3.4.8.1.2 पारिवारिक संदर्भ
3.4.8.1.3 स्त्री की आज़ादी
3.4.8.1.4 शहरी और ग्रामीण परिवेश का चित्रण
3.4.8.1.5 व्यंग्यात्मकता
3.4.8.1.6 आपातकाल का विरोध
3.4.8.1.7 दलित व्यथा का चित्रण
3.4.8.1.8 भाषा एवं शिल्प
3.4.8.1.8.1 बिंब एवं प्रतीक विधान
3.5 निष्कर्ष

अध्याय 4 समकालीन कविता में भारत की सांस्कृतिक अस्मिता- १९८० से २०००तक 142 – 197

4.1 ग्रामीण जीवन
4.2 प्रकृति एवं पर्यावरण
4.3 सहिष्णुता
4.4 लोकतांत्रिक भावना
4.5 परिवार
4.6 स्त्री स्वत्व
4.7 लोक एवं जनजातीय संस्कृति
4.8 अपसंस्कृति के खिलाफ
4.9 अहिंसा
4.10 विश्वशांति, विश्वबंधुत्व एवं लोकमंगल
4.11 स्वदेशीकरण का आग्रह
4.12 मूल्य संक्रमण
4.13 बाज़ारवाद का प्रतिरोध
4.14 भाषाई अस्मिता और शैली
4.15 निष्कर्ष

उपसंहार 198 – 205

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 206 – 215

Pradeep Raj P. “ Search for the cultural identity of India in contemporary Hindi poetry (With special reference to 1980-2000)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2017

प्राक्कथन

समकालीन कविता आम आदमी के संघर्ष का दूसरा नाम है। समकालीन सामाजिक, राजनीति एवं आर्थिक परिस्थिति में व्यक्ति की अभिव्यक्ति बनकर यह कविता उसके सुख–दुख, पीड़ा, आत्मविश्वास, डर आदि भावों को शब्दबद्ध करती है। वह बाज़ारवादी संस्कृति की छिपी साजिश का पर्दाफाश करती है। समकालीन कविता इंसानियत के प्रति शोषण के खिलाफ एक प्रतिरोधी स्वर है।

समकालीन कविता में मेरी विशेष रुचि रही है। इसके अध्ययन के दौरान इन कविताओं को बारीकी से पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ था। समकालीन कविता की भाषा एवं शैली मुख्यतः लोक संस्कृति से ली गई है। भारत की संस्कृति और उसकी अस्मिता भी इसी लोक संस्कृति से अपनी ऊर्जा ग्रहण करती है। अतः समकालीन कविता और भारत की संस्कृति पर विशेष अध्ययन की जरूरत का एहसास हुआ।

सन् 1980 और 2000 के बीच हिन्दी कविता एक बड़े बदलाव से गुज़र रही थी। कवियों के सामने नई चुनौतियॉ आने लगीं। भाषा, विषयवस्तु, शैली, गठन आदि सभी क्षेत्रों में हिन्दी कविता सकारात्मक परिवर्तन की ओर अग्रसर हो रही थी। समकालीन कविता के इस नए तेवर को सही तौर पर चिन्हित करने तथा जन सामान्य के शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध के रूप में इसकी भूमिका की अभिव्यक्तिअध्ययन का विषय है। इस संदर्भ में जहॉ भारत की संस्कृति को सांप्रदायिक शक्तियॉ

गलत तरीके से जनता के सामने प्रस्तुत कर रही हैं वहॉ समकालीन कविता और भारत की संस्कृति के अभेद्य संबंध को दर्शाकर उनके वास्तविक लोकतांत्रिक रूप को प्रस्तुत करना समय की मॉग बन गई है। अतः उपर्युक्त विषय को अपने शोध प्रबन्ध के लिए चुना गया है। 'समकालीन कविता में भारत की सांस्कृतिक अस्मिता की तलाश (सन् 1980 से 2000 तक के विशेष संदर्भ में)' शीर्षक इस शोध प्रबंध को अध्ययन की सुविधा केलिए चार अध्यायों में बॉटा गया है।

पहला अध्याय है–''भारतीय संस्कृति और अस्मिता'', जिसमें संस्कृति, भारत की संस्कृतिऔर अस्मिता पर विचार किया गया है।

दूसरा अध्याय है–''भारत का सांस्कृतिक परिवेश : 1980 के बाद'',जिसमें 1980 के बाद भारत के सांस्कृतिक परिवेश पर एक नज़र डाली गई है।

तीसरा अध्यायहै–''हिन्दी कवितासन् 1980 तक :प्रमुख प्रवृत्तियॉ'',जिसमें1980 तक के हिन्दी कविता और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों का अध्ययन किया गया है।

चौथा अध्याय है–''समकालीन कविता में भारत की सांस्कृतिक अस्मिता : सन् 1980 से 2000 तक'',जिसमें 1980 से 2000 तक के समकालीन कविता में भारत की सांस्कृतिक अस्मिता की तलाश की गई है।

उपसंहार में प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष को प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध कालिकट विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर

एवं अध्यक्ष डॉ. प्रमोद कोव्वप्रत जी के निर्देशन में संपन्न हुआ है। विषय चयन से लेकर हर कदम पर वे मुझे सहायता देते रहे हैं। उनके बहुमूल्य सलाहों एवं सुझावों से ही यह अध्ययन पूर्ण हो पाया है। उनके प्रति मैं सदैव आभारी रहूँगा।

विभाग के अन्य गुरुजनों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ कि वे मुझे समय समय पर प्रोत्साहन देते रहें।हिन्दी विभाग के पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ।अपने माता–पिता के प्रति मैं आभारी हूँ जिनके आशीर्वाद के बिना यह संभव नहीं हो पाता।अपनी पत्नी के प्रति मैं आभारी हूँ जिसकी प्रेरणा, स्नेह एवं साथ के बिना यह संभव नहीं हो पाता।मेरे अन्य मित्रों के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिनके बहुमूल्य सुझावों से मुझे प्रेरणा प्राप्त हुई है।

यह शोध प्रबंध सविनय विद्वानों के सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ। चूँकि विषय काफीव्यापक है इसलिए इसकी कमियों एवं सीमाओं के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

हिन्दी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय

सविनय

प्रदीप राज पी.

Pradeep Raj P. “ Search for the cultural identity of India in contemporary Hindi poetry (With special reference to 1980-2000)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2017

पहला अध्याय

भारतीय संस्कृति और अस्मिता

1.1 संस्कृति

संस्कृति संपूर्ण मानवीय व्यापार का एक पुंज है। इसके अन्तर्गत इंसान के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिकतथा साहित्यिक आचार–विचारों का समावेश होता है। संस्कृति मानव को गढ़ता है। उसका देश–काल से बहुत ही गहरा संबंध है। अतः यह निरंतर परिवर्तनशील है। इसलिए यह जड़ न होकर विकासशील है। समाज लोगों से बनता है और जिस प्रकार लोग आपस में व्यवहार करते हैं, वही उनकी संस्कृति है। संस्कृति विकासोन्मुख होने के कारण उसमें इंसान के आंतरिक और बाह्य संघर्ष मौजूद हैं। इसलिए संस्कृति को द्वन्द्वात्मकता का परिणाम भी कहा जा सकता है। ''अनंत, परिवर्तनशील, अनिश्चित स्थितियों और घटनाओं के बीच मनुष्य का मस्तिष्क प्रतिक्रियाशील होता है। वह उनकी व्याख्या सहज ही करता है, उनका आविष्कार करता है और सूचियों, वर्गों और समूहों में संगठित और सीमित करता है। वस्तुतः मनुष्य के जीवन की जटिलताओं, विषमताओं तथा उसके विरोधाभासों में अंतर्निहित एकता और समग्रता की प्रक्रिया ही संस्कृति है।''[1] किसी भी संस्कृति मेंश्रम का होना अनिवार्य है क्योंकि श्रम किसी भी संस्कृति को आत्मानुभूति, आत्मान्वेषण एवं तथनुसार सामाजिकता की ओर ले चलता है। ऐसी स्थिति में अहं का विलयन होता है तथा समूह व प्रकृति ऐक्य भाव ग्रहण करते हैं। संस्कृति मानव को अपने सामूहिक परिवेश एवं प्रकृति से जोड़ता है। ''मनुष्य ज्ञान के क्षेत्र में जो अर्जित करता है, विचार के क्षेत्र में जो चिंतन करता है, कर्म के क्षेत्र जो घटित करता है, भाव के क्षेत्र में जो सृजित करता है, जीवन को संवारने वउदात्त बनाने के लिए जिस आचार संहिता और

मूल्य प्रणाली का विकास करता है; परिवेश और प्रकृति से जो संबंध स्थापित करता है; जो शील रचना है – सब संस्कृति में आते हैं।''[2]

संस्कृति समुदाय विशेष का अधिकृत, आहृत, व्यवहृत रूप है। संस्कृति एकदेशीय न होकर, अन्तर्देशीय व अन्तर्जातीय है। वैज्ञानिक दृष्टि से संस्कृति स्वावलंबन नहीं बल्कि अंतरावलंबन के अर्थ में ग्राह्य है। संस्कृति विचार, ज्ञान, भावना, प्रथाओं और संस्कारों का एक ऐसा समन्वित रूप है जो एक पीढ़ी से दूसरी को हस्तांतरित होता रहता है। किसी देश या समाज की आत्मा उसकी संस्कृति होती है। ''संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति 'कृ' धातु से 'सम्' उपसर्ग और 'सुट्' प्रत्यय के संयोग से हुई है जिसका अर्थ हुआ 'सम प्रकार अथवा भली प्रकार से किया गया व्यवहार'। इस प्रकार के व्यवहार में मानव के सब विचार, चेष्टाएँ, कर्म आदि हैं जो उसके लौकिक और पारलौकिक सभी क्रियाकलापों को धारण करते हैं।''[3]अतः संस्कृति एक प्रकार से मानव का परिष्कार है। मानव द्वारा किया आचार व विचारों का परिष्कार है। संस्कृति किसी देश या जाति के दर्शन, परंपराओं और विविध कलाओं का समुचित रूप है और इनमें आने वाले निरंतर परिष्कार काभी। किसी देश या जाति की जीवन शैली का परिचय संस्कृति से प्राप्त होता है। संस्कृति किसी देश या जाति के समाज–स्वीकृत तत्वों पर आधारित जीवन शैली या पद्धति है। स्पष्टतः कहें तो मानव समुदाय की संस्कृति उसकी सामाजिक भावनाओं, मनोवृत्तियों, परंपरागत मान्यताओं, व्यवहार, रीति–नीति, संगीत एवं कला–कौशल का समन्वित रूप है। संस्कृति के अन्तर्गत मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन से लेकर समाज में उसके समस्त कार्यकलापों एवं आचरण की गतिविधियॉ आ जाती हैं। ''असल में संस्कृति जीवन का एक

तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं। अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं, वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ–साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते हैं। इसीलिए संस्कृति वह चीज़ मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना एवं विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है।''[4]

संस्कृति के कई आवश्यक तत्व हैं जिनका होना संस्कृति की सार्वभौमिकता को दर्शाती है। ऐसे तत्व जो मानव के विकास के विविध सोपानों के रूप में अपनी अदायगी निभाते हैं, जैसे– भाषा, दर्शन, धर्म, विचारधारा, कला, साहित्य, नैतिकता आदि। संस्कृति प्रत्येक भू–भाग में विद्यमान मूल्यों, जीवन पद्धतियों, रीति–रिवाज़ों,कला–साहित्य व धर्म का योगफल है।

1.2 संस्कृति की अवधारणा

संस्कृति एक निरंतर प्रक्रिया है। वह वर्तमान के लिए अतीत से बहुत कुछ लेती है और अपने अनेक तत्व भविष्यत को भी देती है। दूसरे शब्दों में कहें तो संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग है। यह परिष्कृत जीवन शैली का भी द्योतक है। ऐसी परिष्कृत जीवन शैली जिसमें उच्च वैचारिक उपलब्धियॉ और कला रूपों का सृजन और उपभोग भी शामिल हैं। ऑस्ट्रियन विचारक व चित्रकार गुस्ताव क्लेमके अनुसार– ''संस्कृति के कई तत्व हैं जैसे – रीति–रिवाज़, सूचनाऍ (और ज्ञान) और कौशल; शांति और युद्ध के समय पारिवारिक और सार्वजनिक

जीवन; धर्म और विज्ञान। इन सब से संबंधित प्राचीन अनुभव का नयी पीढ़ी को परिषण है।''[5] यह ऐतिहासिक प्रक्रिया भी है और उसका परिणाम भी। इसमें निरंतर परंपरा तथा मूल्यों का परिमार्जन और संवर्धन होता रहता है। एक अन्य विदेशी विचारक के अनुसार ''संस्कृति वह समुच्चय है जिसके अंतर्गत ऐसे ज्ञान,विश्वास, कला, नैतिक सिद्धांत, विधि, प्रथाएँ और समस्त अन्य क्षमताओं और आदतों कासमावेश होता है जिन्हें मानव समाज के सदस्य के रूप में ग्रहण करता है।''[6]

इस प्रकार देखें तो संस्कृति मानव के समस्त पहलुओं का परिष्करण है। अतः संस्कृति की अवधारणा पर ध्यान देंतो उसकी निर्मिति में तीन प्रमुख तत्वों का योगदान है – मूल्य, परंपरा एवं इतिहास। इनके बिना संस्कृति की पहचान न के बराबर है। इन्हीं तत्वों से होकर संस्कृति मानव जाति के परिष्कार में अपना ध्येय निभाती है। इन्हीं से सांस्कृतिक अस्मिता की सही पहचान हो सकती है। मूल्य जहॉ मानव जीवन के विकास में क्या सही और क्या गलत है, इसका निर्धारण करती है तो दूसरी ओर परंपरा मानव जाति के विश्वासों एवं धर्म पर आधारित है जिसकी उत्पत्ति काल भूतकाल में है। जिसका ध्येय इन तत्वों को अपने आने वाली पीढ़ी को सौंपना है। इतिहास मानव जाति की उत्पत्ति और विकास का अध्ययन करता है। यह मानव जाति के समग्र ज्ञान अर्जन का सूचकांक है। इन्हीं तीनों पक्षों के अध्ययन के ज़रिए ही हम संस्कृति की सही व्याख्या कर सकते हैं। ''परंपरा संस्कृति का वह भाग है जिसमें सामाजिक संस्थाओं, धार्मिक विश्वासों, रूढ़ियों आदि का समावेश है, मूल्य किन्तु मुख्यतः मानसिक पुनर्रचना से संबंधित है जिसका लक्ष्य मानव एवं उसके समाज की वैचारिक दिशा को निर्धारित करता है।''[7]''इतिहास

इंसान की उत्पत्ति एवं विकास है जिसमें राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, जातिपरक गतिविधियॉ है, का पूरा अंकन होता है।''[8] अतः संस्कृति से इन तीनों का रिश्ता गहरा है और किसी भी जाति या देश की संस्कृति के अध्ययन में इन तीनों तत्वों का होना अनिवार्य है। ''जीवन को सामाजिक स्तर पर सुन्दर, उदात्त एवं मंगलमय बनाना ही संस्कृति है जिसके अंतर्गत, धर्म, नीति, कला, साहित्य, संगीत आदि आते हैं। संस्कृति समाज की मूल जीवनदायिनी शक्ति है।''[9] भारतीय संस्कृति पर विचार करते समय इन तीन अंगों – मूल्य, परंपरा एवं इतिहास को देखना आवश्यक है।

1.3 भारतीय संस्कृति

संस्कृति मानव विकास का एक मुख्य घटक है। भारतीय समाज के विकास में उससे जुड़ी संस्कृतियॉ ही प्रमुख कारण रही हैं। ''संस्कृति वह शक्ति है जिसे मनुष्य अपने धर्म, संस्कार और वातावरण से पाता है और यही उसे प्रेरणा देती है। संस्कृति आत्मा के अभ्युत्थान की प्रदर्शिका है। वह उसकी आंतरिक व बाह्य कठिनाइयों पर काबू पाने में सहायक सिद्ध होती है।''[10] इसी तरह भारतीय समाज के विकास में कोई एक संस्कृति या एक कालखण्ड न होकर, कई संस्कृतियों एवं एक लम्बे समय की अवधि ने भारतीय संस्कृति के रूपायन में सहायक बनी। भारतीय संस्कृति एक महानदी के समान है जिसके रूपायन में कई छोटी–मोटी धाराओं की भूमिका रही है। भारतीय संस्कृति की मूल शक्ति अंतरावलम्बन में है। भारतीय संस्कृति का स्वरूप बहुसामुदायिक है।

भारत विविध सामाजिक और सांस्कृतिक तत्वों का संश्लेषण कहा जाता है। हिमालय से हिन्द महासागर तक फैला यह महान देश अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक वैविध्य के लिए प्रसिद्ध है। भारत की संस्कृति को विश्व के पुरातन संस्कृतियों में गिना जाता है। यह अनेक धर्मों, जातियों व भाषाओं की संगमभूमि है। यहॉ गॉव, जाति, परिवार, विधि व्यवस्था में संश्लेषण का भाव देख सकते हैं। प्राचीनकाल से आज तक भारतीय समाज की निरंतरता इसी संश्लेषण के परिणामस्वरूप है। भारत के प्रमुख धर्म के रूप में हिंदू, बौद्ध, जैन, इस्लाम, ईसाई, सिक्ख हैं। इनके अलावा अनेक ऐसे जातियॉ व जनजातियॉ हैं जो मुख्य धारा के साथ विद्यमान हैं। मूलतः भारतीय संस्कृति एक जीवन पद्धति है, जिसमें बाहरी संपर्क होने से निरंतर संशोधन होता रहा है। संस्कृति के कई आवश्यक तत्व हैं जिनका होना संस्कृति की सार्वभामिकता को दर्शाती है। ऐसे तत्व जो मानव के विकास के विविध सोपानों के रूप में अपनी अदायगी निभाती है जैसे – दर्शन, विचारधारा, धर्म, कला, साहित्य, नैतिकता, आदर्श व भाषा। संस्कृति इन सभी का योगफल है। भारत जैसे विविध सांस्कृतिक रूपों वाले देश में यह विविधता अपने में प्रत्येक इन सभी वैविध्यपूर्ण सांस्कृतिक पुंजों को संजोए हुए हैं। इसलिए अनेकता यहॉ के सामाजिक गठन की मूलभूत इकाई है। भारत की संस्कृति की सर्वग्राह्यता उसका सबसे बड़ा गुण है। ''भारतीय संस्कृति में ग्राह्य करने की अद्भुत शक्ति है। इस कारण उसने समय–समय पर विदेशी संस्कृतियों के सांस्कृतिक तत्वों को आत्मसात्मीभूत कर अनुकूलन के द्वारा उसे नवीनता प्रदान की है।''[11]

भारत की सांस्कृतिक विरासत को यहॉ की जनजातियों का योगदान भी विशिष्ट है। जैसे कि यह जातियॉ शहरों और गांवों से दूर वन, पहाड़ी, रेगिस्तान व घाटियों में रहती हैं, उस प्रत्येक भू–भाग पर आश्रित रहते हुए भी वहॉ की प्राकृतिक संपदा के संरक्षक होते हैं।

भारतीय संस्कृति की कई विशेषताएँ हैं। सह–अस्तित्व इस संस्कृति की जीवन पद्धति में सर्वत्र व्याप्त है। यहॉ आदर्श भी है और यथार्थ भी, यहॉ रूढ़ि भी है और मौलिकता भी, यह एक का दूसरे से तर्कपरक व द्वन्द्वात्मक संबंध है। अन्तर्जातीय संघर्ष और सामाजिक व धर्मिक द्वन्द्व ने इसकी ऐतिहासिक प्रगति में अपना योगदान दिया है। अगर भारत की संस्कृति को एक इकाई के अन्तर्गत लाएँ तो कई ऐसी संस्कृतियों की जड़ें दिखाई देंगी जो अपनी–अपनी अस्मिता के साथ मौजूद हैं, जो द्रविड़,आर्य, युनानी, शक, कुषाण, आभीर, गुर्जर, हूण, अरब, मुगल, अंग्रेज़ आदि रूपों में फैले पड़े हैं। यहॉ शास्त्रीय और लौकिक परंपराओं का अंतरावलम्बन रहा है। यही आदान–प्रदान की रीति की मौजूदगी से ही भारतीय समाज विश्रृंखलित होने से बचा रहा है। ''भारत के सांस्कृतिक अवबोध का विकास कई तबके में बंटा है। मुख्य रूपसे जो शास्त्रीय परंपरा है, उसका प्रभाव बहुत व्यापक है। इस शास्त्रीय परंपरा के कई अंशों को भारत के क्षेत्रीय और स्थानीय संस्कृतियों ने स्वीकृत की हैं। मगर उसी समय इन क्षेत्रीय और स्थानीय संस्कृतियों ने अपनी अस्मिता को बनाए रखा है। दूसरे शब्दों में शास्त्रीय परंपराओं का बड़ा अंश लोकव्यापीकरण एवं स्थानिकीकरण की प्रक्रिया से जुड़ गई। महान् धार्मिक परंपराओं के अंशों को लोक संस्कृति ने अपने ढांचे मे ढाल लिया या उन में स्थानिकता कारंग चढ गया।''[12]

भारतीय संस्कृति में अ–भारतीय मूल के तत्व हैं जो देशजीकरण की प्रक्रिया द्वारा अब भारतीय हो गए हैं। भारतीय संस्कृति की विविधता की स्वीकृति ही उसकी शक्ति है। भारत की सांस्कृतिक इतिहास के प्रमुख चार घटनाएँ हैं जिसने यहॉ की संस्कृति को गहरे रूप से प्रभावित किया है, वे हैं–आर्यों का आगमन, महावीर और गौतम बुद्ध का दर्शन, इस्लाम तथा अंग्रेज़ों के आगमन। भारतीय संस्कृति के निर्माण में विश्व के कई संस्कृतियों का योगदान रहा है। अतः भारतीय संस्कृति को किसी एक जाति, भाषा या धर्म के आधार पर निर्धारित नहीं किया सकता। इस्लाम और इसाई धर्म के आगमन के पूर्व प्राचीन काल में भारत भूमि पर नीग्रो, ऑष्ट्रिक, द्रविड़, आर्य, युनानी, युची, शक, आभीर, हूण, मंगोल, तुर्क आदि आए और यहॉ की संस्कृति में घुल–मिल गए। ''भारत में बसने वाली कोई भी जाति यह दावा नहीं कर सकती कि भारत के समस्त मन और विचारों पर उसी का एकाधिकार है। भारत आज जो कुछ है, उसकी रचना में भारतीय जनता के प्रत्येक भाग का योगदान है। यदि हम इस बुनियादी बात को नहीं समझ पाते तो फिर हम भारत को भी समझने में असमर्थ रहेंगे।''[13] भारतीय संस्कृति उसके हर अंग को समान रूप से पोषण देने का कार्य करती रही। इसलिए उसकी संरचना कभी भी पाश्चात्य सामाजिक व्यवस्था से मेल नहीं खाती है। भारतीय संस्कृति वास्तव में विश्व आद्मियत की खोज है। उसमें सभी भिन्नतओं से परे हर एक से जुड़ने की बात कही गई है। निरन्तर बदलते सामाजिक परिस्थिति और मूल्यों को मद्देनज़र रखते हुए यह एक नयी और उन्नत आस्था की खोज है जो मानवीय जीवन पद्धतियों को एक साकार रूप देती है। भारतीय संस्कृति का आधार शांति और सहनशीलता

है। भारतीय संस्कृति का पूरा परिवेश सामंजस्य से उत्पन्न हुआ है। ''भारतीय संस्कृति जीवन में उच्चतम मूल्यों को महत्व देती है। वह अपने अन्तर्निहित ऐसे दिव्य गुण रखती है जो शाश्वत हैं। अतएव वह अनेक मानवीय मान्यताओं की संस्थापक है।''[14]

भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत ऐसे महान रचनाएँ हुई हैं जिसने यहाँ के मानव समाज को सतत आशावान बनाया है। चाहे वह महाभारत, रामायण, वेद, ब्राह्मण, पुराण, धम्मपद, भगवत्गीता हो। भारतीय संस्कृति की विशेषता उसके स्वप्न हैं, उसकी कथाएँ, उसके मिथक, उसकी फैंटसी, उसका अध्यात्म व उसका आदर्श है। भारतीय संस्कृति उसके प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति अनुरागी है। सामंजस्य उसका गुण है। यही समन्वयकारी प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति का प्राण तत्व है। लोक सेवा, लोक कल्याण, विश्व मानवता, सत्य, अहिंसा, वसुधैव कुटुम्बकम्, पारिवारिक संबंध, नैतिकता, प्रेम आदि भारतीय संस्कृति का हिस्सा है। यही उसके सांस्कृतिक मूल्य भी हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय संस्कृति में निरंन्तर सांस्कृतिक गतिशीलता देखने को मिलती है। प्रत्येक काल में अलग–अलग जातियाँ व उनकी संस्कृति भारत भूमि में घुल–मिल गई हैं, जिससे एक मिली–जुली संस्कृति का विकास यहाँ हुआ है। यह एक प्रकार की अन्तर–सांस्कृतिक लेन–देन या आदान–प्रदान का भी परिणति है। ''मानसिक संरचना में जो भी कलुष और पशुत्व है, उसे दूर करने के निमित्त किए गए हमारे प्रयत्न ही हमें संस्कारवान बनाते हैं तथा इन संस्कारों से ही हमारी सांस्कृतिक चेतना का निर्माण होता है। यही

भारतीय संस्कृति की विशेषता है।''[15]'एकंसद्विप्रा बहुधा वदन्ति' पूर्ण अहंशून्यता से भरपूर होकर, 'सर्वभूतहिते रत' सब के लिए हित सोचने व करने की प्रेरणा भारतीय संस्कृति देती है। भारतीय संस्कृति का मूल भावअहिंसा का है। यहॉ के सभी धर्मों ने भी अहं का त्याग का ही संदेश दिया है। यहॉ के प्रत्येक धर्मों ने भारतीय जनता की सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन को निरन्तर परिष्कृत किया है। संश्लेषण और समष्टि बोध से ही भारतीय संस्कृति के जन्म और अस्तित्व को हम पहचान सकते हैं। भारतीय संस्कृति विदेशी संस्कृति से कट कर या बाधा के रूप में कभी नहीं रही। यजुर्वेद में कहा है – ''सा प्रथमा संस्कृति विश्ववरा'' अर्थात् वह जो विश्व का वरण करे वह श्रेष्ठ संस्कृति है। यहॉ की संस्कृति में जातीय भावना से अधिक सामूहिक भावना देखने को मिलती है।

1.4 भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

1.4.1 **प्राचीनता**: भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसके प्राचीन होने की है। यह विश्व की पुरातन संस्कृतियों में से एक है। मिस्र, असीरिया, बेबीलोनिया, यूनान आदि संस्कृतियॉ आज इतिहास के पन्नों में रह गई हैं परन्तु भारतीय संस्कृति तब से अब तक अपनी मौलिकता को लिए आज भी विद्यमान है। ''मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा के उत्खनन से यह तथ्य प्रमाणित हो चुका है कि यह संस्कृति कितनी पुरानी है। इसकी विशेषता यह है कि यहॉमिस्रएवं बेबीलोन की संस्कृतियॉ इतिहास के पन्नों में सिमटकर रह गई हैं, वहॉ भरतीय संस्कृति नित नए परिष्कारों व संस्कारों को ग्रहण करती हुई आज भी जीवित है।''[16]भारत पर ईरान,

यवन, शक, पल्लव, कुषाण, हूण, अरब, तुर्क, पठान, मंगोल व यूरोपियन जातियों का आक्रमण निरन्तर होते रहे और कईयों ने यहॉ अपना साम्राज्य भी स्थापित किया है। परन्तु भारत की मूल संस्कृति नेइन सभी संस्कृतियों के गुणों को आत्मसात कर अपने को परिष्कृत किया है। इसी ग्रहणशीलता ने इसे दीर्घकालीन व दीर्घजीवी बनाया है।

1.4.2. **समन्वयशीलता**: भारतीय संस्कृति की सर्वश्रेष्ठ विशेषता रही है उसकी समन्वयशीलता। इसी विशेषता के कारण भारतीय जनजीवन में विविध जातियॉ, संप्रदाय, रीति–रिवाज, आस्थाऍं, धर्म तथा मत विलीन हो गए। अनेकताओं के होते हुए भी सामाजिक स्तर पर एकता रही। इसी समन्वयशीलता के कारण ही भारतीय संस्कृति आज भी विद्यमान है। ''निःसंदेह भारत में आंतरिक मूलभूत ऐसी एकता है जो भौगोलिक पार्थक्य अथवा राजनीतिक अधिराजस्व से निर्मित एकता से कहीं अधिक गहन एवं गंभीर है। यह एकता रक्त, रंग, भाषा, वेष–भूषा, रीति रिवाज़ और संप्रदाय की अनेकानेक विभिन्नताओं का अतिक्रमण करके बहुत ऊॅची उठ जाती है।''[17] भारतीय संस्कृति का यह कलेवर जो संस्कृतियों के आदान–प्रदान से बना है, निश्चय ही जातीय सम्मिश्रण, सामाजिक समन्वय तथा वैचारिक एकीकरण के आधार पर निर्मित हुआ है। यह समन्वयकारी प्रक्रिया अब भी गतिशील है।

1.4.3. **सहिष्णुता**: सहिष्णुता भारतीय संस्कृति की वह विशेषता हैं जिसके कारण यह दीर्घजीवी हो सकी। भारत के मूल वासियों ने कई आक्रमणकारियों का सामना किया है परन्तु साथ में उनके द्वारा लाई गई संस्कृति को भी अपनाया है। ''अशोक ने सभी धर्मों के मुख्य सिद्धांतों को

शिलाओं और स्तंभों पर खुदवा दिया था। अकबर ने हिन्दुओं और मुसलमानों को दीन–इलाही के झंडे के नीचे आने का आह्वान किया था। सूफी मत वेदांत तथा इस्लामी सिद्धांतों के संगम पर प्रकट हुआ। कबीर, नानक, तुलसी, जायसी प्रभृति मनीषियों ने व्यापक मानवीय सहिष्णुता से भारतीय संस्कृति को पोषित किया है। इस प्रकार सहिष्णुता भारतीय संस्कृति की जन्मजात विशेषता रही है।''[18]

1.4.4. **ग्रहणशीलता**: भारत भूमिमें जो नये तत्व आते गए भारतीय उन्हें पचाकर अपना अंग बनाते गए। भारतीय संस्कृति में हमें यूनान, शक, हूण, कुषण, यहूदी, मुगल, इसाई आदि जीवन संदर्भों के झलक मिल जाएंगे। सभी संस्कृतियों के मंगलकारी एवं सुन्दर तत्वों को भारतीय संस्कृति ने सहर्ष ग्रहण किया है। इस ग्रहणशीलता के कारण भारत में जितना सांस्कृतिक वैविध्य, विशालता और व्यापकता दिखाई पड़ती है, उतनीशायद ही किसी दूसरे देश में मिल पाता है। ''मानव जाति को विभिन्न हिस्सों में बॉटने वाले सब पंथ यहॉ पाए जाते हैं। सब प्रकार की पूजा पद्धतियॉ यहॉ प्रचलित हैं। प्राचीनकाल के वेद, कपाल और चार्वाक से आधुनिक युग के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तक सभी विचारधाराऍ और दर्शन यहॉ मिलते हैं।''[19]

1.4.5.**आध्यात्मिकता**: आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का प्राण है। यह संस्कृति सभी जीवजंतुओं में ब्रह्मतत्व को देखता है। यह विश्वमानवतावादी संस्कृति है। इस विशाल भारतीय संस्कृति के निर्माण में विविध धर्मों कायोगदान रहा है। अध्यात्मिक तत्व भारत के महान धर्मों से होकर भारतीय जीवन में घुलमिल गई है। अध्यात्मिकता ने कला,

साहित्य, संगीत, दर्शन, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में अपना गहरा प्रभाव डाला है। भारतीय संस्कृति ने इंसान की भौतिक आवश्यकताओं के साथ–साथ उसकी आत्मा का उत्थान भी चाहा है। हमारे पुराने चिंतकों ने मनुष्य के जीवन को उत्कृष्ट बनाने तथा पूरी मानवता की भलाई हेतु अध्यात्मिकता को सर्वश्रेष्ठ बताया है। ''भारतीय संस्कृति आत्मोपलब्धि पर बल देती है। अध्यात्म से तात्पर्य आत्मा का चिंतन है। इस दृष्टि से अध्यात्मिकता का मुख्य लक्ष्य मानव का आत्मिक उत्कर्ष करना है।''[20]

1.4.6. **गत्यात्मकता**ः भारतीय संस्कृति सदा से गत्यात्मक रही है। इसमें अपने को युगानुरूप ढालने की अद्‌भुत क्षमता है। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसने परिवर्तन को स्वीकारा है। अपने मूल तत्व को बनाए रखकर समय के साथ दूसरी संस्कृतियों से ग्रहण कर निरंतर अपने को परिवर्तित एवं परिवर्द्धित किया है। ''गत्यात्मकता के परिणामस्वरूप ही नई सामुदायिक अपेक्षाओं, आकांक्षाओं तथा उपलब्धियों को भारतीय संस्कृति स्वीकार करती आ रही है। इसी से उस में चिरस्थायित्व एवं जीवंतता बनी हुई है।''[21]

1.4.7. **विश्वकल्याण की भावना**ः भारतीय संस्कृति ने विश्व को एक कुटुम्ब के रूप में लेकर उसमें बसने वाली सभी प्राणियों व वनस्पतियों की कल्याण की कामना की है। 'खुद जियो और औरों को भी जीने दो' वाली विचार प्रणाली भारतीय संस्कृति ने स्वीकारा है।

''संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

सर्वे भवन्तु सुखिनः एर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।''[22]

1.4.8. **अहिंसाः** भारतीय संस्कृति मानव को दूसरे मानव तथा मनुष्येतर प्राणियों के लिए दयाभाव की शिक्षा देती है। तदनुसार मन, वचन और कर्म से किसी को भी पीड़ा न पहुँचाना अहिंसा है। वैदिक संस्कृति के साथ–साथ, बौद्ध, जैन जैसे मतों ने भी इसी भावना को प्रोत्साहित किया है।

''अहिंसा परमो धर्मः सव्रप्राणभृतां समृतः''[23]

प्राणियों को हानि न पहुँचाना तथा

''अहिंसा सत्यवचनं कषमा चेति विनिश्चितम''[24]

मानव सभी प्राणियों के प्रति सद्भाव, विनम्र होना चाहिए।

1.4.9. **परोपकारपरायणताः** भारत की संस्कृति की एक और विशेषता है – परोपकारपरायणता। दूसरों की भलाई इसका लक्ष्य है। दूसरों को सहायता प्रदान करना भारतीय संस्कृति का मुख्य ध्येय है। यह मूल्य भारतीय संस्कृति के तहत उत्तम माना जाता है और यहीसंस्कृतिकी आधारशिला है।

1.4.10. **त्याग भावनाः** भारत की संस्कृति प्राप्त संपत्ति को त्यागपूर्वक उपभोग करना तथा दूसरों की धनसंपत्ति की लिप्सा नहीं करना सिखाती है। भारत की संस्कृति इस त्याग के सिद्धांत को जीवन के चार प्रमुख सोपान के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती है– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इसका लक्ष्य समाज की बेहतरी करना है।

1.4.11. **सदाचार पालनः** भारत की संस्कृति सद्भावना एवं सद्कर्म को पोषण देने वाली संस्कृति है। आचरण की शुद्धता होना श्रेष्ठ बताया गया है।

1.4.12. **सर्वांगीणताः** भारत की संस्कृति की एक और विशेषता सर्वांगीण विकास की ओर ध्यान देना है। उसका लक्ष्य ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति करना है। इसका मतलब यहॉ शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों प्रकार की शक्तियों के विकास पर तुल्य बल देना है। जीवन का ध्येय शरीर, मन और आत्मा का सामंजस्यपूर्ण विकास है। इसके अन्तर्गत मनुष्य के चार पुरूषार्थ और चार आश्रम आते हैं। चार पुरूषार्थ – धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष व चार आश्रम – ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम। ''यह कहा जाता था कि चारों की प्राप्ति का प्रयास समान रूप से करना चाहिए, जो एक का ही सेवन करता है, वह निन्दा का पात्र है (धर्मार्थ कामाः सममेव सेव्याः यो ह्येक सक्तः स जनो जघन्यः)। मनुष्य का आदर्श सर्वांगीण विकास है, वह न तो धर्म की उपेक्षा करे और न ही काम और धर्म की ओर अधिक ध्यान दे।''[25] यही भारतीय संस्कृति है।

1.4.13. **धर्मनिरपेक्षताः** धर्म शब्द 'धृ' धातु से मन् प्रत्यय लगाकरबनता है। 'धृ' धातु का अर्थ है – धारण करना। इस प्रकार जो भी धारणीय है उसे धर्म कहते हैं। धर्म वह जिसके धारण करने से मनुष्य का कल्याण हो। महर्षि कणाद द्वारा अपने वैशेषिक दर्शन में धर्म की अत्यन्त सारगर्भित एवं वैज्ञानिक व्याख्या इस प्रकार हैः

''यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धि स धर्म्मः।''[26](धर्म वह है जिससे इस जीवन का अभ्युदय अथवा उन्नति हो।)

परन्तु आधुनिक संदर्भ में धर्म के अर्थ का संकुचन हुआ है। यह किसी पंथ, विचारधारा, मत या जाति विशेष हो गया जिसका आधार परंपरा व रीतिरिवाज़ है। इस प्रकार के संकुचन के फलस्वरूप धर्मनिरपेक्ष शब्द बना है। इस विषय के आरम्भ में की गई धर्म की व्याख्या से ही भरतीय संस्कृति की धर्म निरपेक्षता स्पष्ट होती है। वह किसी पंथ या जाति या कौम विशेष की न होकर सभी मनुष्यों की उन्नति पर आधारित है।

''अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम।।''[27]– याज्ञवल्क्य स्मृति

इसका अर्थ हैः–(अहिंसा अर्थात् मन वचन कर्म से किसी प्राणी को दुख न देना, सत्य, अस्तेयं अर्थात् संपत्ति की लालसा न करना, शौच अर्थात् मन और शरीर पवित्र रखना, इन्द्रियनिग्रहः अर्थात् काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि का दमन, दानं अर्थात् दान देना, दमो अर्थात् मन को वश में रखना, दया अर्थात् सभी जीव जन्तुओं के प्रति दया भाव रखना, क्षान्तिः अर्थात् सहनशील रहना, ये सभी सर्वसाधारण के लिए धर्म साधन हैं)। इससे यहॉ स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति में धर्म का अर्थ मानव समाज की उन्नति है अर्थात् भारतीय संस्कति पहले से ही धर्मनिरपेक्ष रही है। इसका मुख्य ध्येय समन्वय है।

निष्कर्षतः भारतीय संस्कृति एक मिली जुली संस्कृति है। वसुधैवकुटुम्बकम् इसका दृष्टिकोण है। यह हमेशा से दया, करुणा, त्याग, परोपकार जैसे सत्कर्मों का पोषण करती आयी है।

1.5 भारतीय संस्कृति : मूल्य –संबंधी विश्लेषण

भारत की संस्कृति गुणग्राहक संस्कृति है। भारतीय संस्कृति का मूल्य विचारों के प्रति सहिष्णुता तथा उदार दुष्टिकोण पर आधारित है। यह रूढ़िमुक्त व निरन्तर परिवर्तनशील है। परिवर्तन का सिद्धांत यहॉ सदियों से मान्य है और इसी को यहॉ के मूल्य निर्माण की कसौटी के रूप में देखा गया है जो स्थल और काल के अनुरूप रहा है। यह प्रकृति के नियमों पर आधारित है क्योंकि यहॉ प्रकृति मनुष्य से भिन्न नहीं बल्कि मनुष्य को प्रकृति के एक अंग के रूप में देखा गया है। इसलिए अगर यह कहा जाए कि भारतीय संस्कृति के मूल्य प्रकृति से तादात्म्य होकर उसके द्वारा की गई अभिव्यक्ति है तो इसमें दोहरी राय शायद ही होगी। इसकी झांकियॉ हमें संगम साहित्य, ऋग्वेद, उपनिषद् आदि से ही प्राप्त होना आरम्भ हो जाता है। अतः इस संस्कृति में विविध भाषा, गोत्र, वर्ण, धर्म, जाति, समूह, परंपरा आदि के होते हुए भी सभी की जीवन पद्धति में एकात्म का भाव विद्यमान है।

भारतीय संस्कृति के मूल्य निर्माण में कई देशी–विदेशी संस्कृतियों का हाथ रहा है जो इतिहास के प्रत्येक कालखण्ड में यहॉ आए और यहॉ की संस्कृति में घुलमिल गए। इस प्रकार निर्मित भिन्नता में एकता की धारा एक सार्व मूल्य का रूपलेकर, यहॉ की संस्कृति को विविध–मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई है। ''प्राचीन, मध्य एवं आधुनिककालीन

भारतीय इतिहास पर दृष्टि डालने से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय जनसमुदाय के बीच अनेक प्रकार की भिन्नताओं के होते हुए भी उसमें आंतरिक एकता की दीप–शिखा सतत् प्रज्वलित रही है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति का प्रवाह सामुदायिक एकता का प्रवाह रहा है। इस प्रवाह में काल क्रम से आने वाले विघटनवादी तत्व के कंकड़–पत्थर या तो घिसकर अपना अस्तित्व खो बैठे या आत्मसात् कर लिए गए।''[28]

भारत के कला, साहित्य और मूल्य पर कई संस्कृतियों का प्रभाव रहा है। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों, बौद्ध और जैन धर्मों के ग्रन्थों, शक, कुषाण, ग्रीक, इस्लाम तथा इसाई धर्मों के प्रभाव व इनकी कला–संगीत, साहित्य, जीवन पद्धतियॉ आदि ने भारत के मूल्य निर्माण में बड़ी भूमिका निभाई है। यह यहॉ की समन्वयकारी संस्कृति के कारण हुआ है। इसने अनेक प्रकार की भाषाओं, रीति–रिवाज़ों और परंपराओं की पारस्परिक विपरीतताओं में समन्वय स्थापित कर अभिन्नता का उत्तम आदर्श खड़ा किया है। इस तरह उच्चादर्शों से निर्मित मूल्य प्रणाली का अनुसरण भारत की जनता अपनी बाहरी भिन्नता के उपरांत भी किया है। जिससे एक सार्व मूल्य की पृष्ठभूमि तैयार हो पाई है। ''इस प्रकार परिस्थितियों की पारस्परिक विपरीतावस्था में जीवन के मान–मूल्यों तथा आचार–विचारों की विभिन्नता में और परंपरागत मान्यताओं की अनेकता में एकता स्थापित कर भारतीय संस्कृति ने विश्व–संस्कृति के इतिहास में अपना प्रतिष्ठित स्थान बनाया।''[29]

भारत कई धर्मों और जातियों का देश है। अतः प्रत्येक धर्म एवं जाति की अपनी आराधना पद्धति है। परन्तु इन सभी धर्मों व जातियों के

बावजूद कई साधारण जातीय उत्सव भी शामिल हैं जिनकी परंपरा जनजातीय विशेष से उत्पन्न हुई है। इन उत्सवों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी प्रकृति प्रादेशिक है। अतः यह एक विशेष प्रदेश के आराधना स्थान या सार्व विश्वास से जुड़ा हुआ है। इसके फलस्वरूप यह उत्सव धर्म व जाति भेद से परे उस पूरे प्रदेश के लोगों के जीवन में एक खास प्रभाव डालता है। एक प्रदेश के लोगों में एक समान प्रभाव डालने वाले ये उत्सव अपने में एक सार्व मूल्य का निर्माण करता है। इसलिए भारत में उत्सव जन साधारण की संस्कृति का हिस्सा है। यह उत्सव या त्योहार हमारी सांस्कृतिक मूल्य का एक अभिन्न अंग है जो जन साधारण को किसी धर्म या जाति का अंग बनाने से पहले उसे इंसानियत का एक अटूट हिस्सा बनाता है। अतः हमारी भारतीय संस्कृति –''परस्पर विरोधी भावनाओं, परस्पर विरोधी उपासना – पद्धतियों और परस्पर विरोधी दार्शनिक परंपराओं का सम्मान करते हुए अपने आप में जीने का अभ्यास करना और अपने आपको समाज के लिए उपयोगी बनाते रहना।''[30] भारतीय संस्कृति के मूल्य निर्माण के तहत् सांस्कृतिक द्वंद्वात्मकता की प्रक्रिया विद्यमान है। भारतीय संस्कृति पारिवारिक संबंधों को बड़ा महत्व देती है। अतः यह एक ऐसी संस्कृति है जो व्यक्ति व परिवार के स्तर से ही समन्वय, उदारता, सहवास जैसे मानवीय मूल्यों का पोषण करती है। यही कारण है कि भारत में संयुक्त परिवार की प्रथा चलती आई है। अतः यह संस्कृति भिन्न मान्यताओं, आदर्शों एवं जीवन पद्धतियों का सम्मिश्र रूप है तथा युगानुरूप परिवर्तनों को आत्मसात् करती हुई अबाध गतिवाली प्रवाहमान धारा बनकर बह रही है। ''भारतीय चिन्तन में अनेक संप्रदाय हैं जो सिद्धांतों की दृष्टि से नितान्त भिन्न और कभी–कभी तो

पूर्ण विरोधी हैं। किन्तु उनका यह विरोध मात्र वैचारिक है उससे उनके हिन्दू या भारतीय होने में कोई अन्तर नहीं पड़ता।''[31]भारतीय संस्कृति की इसी उदार एवं समन्वयकारी दृष्टिकोण के कारण यह विश्व के पुरातन संस्कृति होने के बावजूद आज भी विद्यमान है। ''उसने दिखाया कि विरोध तो प्रतीयमान होते हैं, केवल बाह्य होते हैं, अंततः सत्य एक है—अविरोधी है। इसी भावना ने 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की भावना को पैदा किया, इसी ने भारतीय संस्कृति में लचीलापन और सहनशक्ति कोपैदाकिया।''[32]यही कारण है कि भारतीयता व उसके मूल्य सदियों की सभ्यता और संस्कृति के विकास के भीतर से हमने प्राप्त किया है।

1.6. भारतीय संस्कृति : परंपरा —संबंधी विश्लेषण

किसी देश की संस्कृति प्राचीन परंपराओं और मान्यताओं से अनिवार्यतः आबद्ध होती है। अतः यह परंपरा संस्कृति का अभिन्न अंग है। परंपरागत मान्यताएँ अगणित वर्षों से अविच्छिन्न रूप से चली आ रही हैं। अतः परंपरा को संस्कृति से अलग नहीं किया जा सकता। संस्कृति इन्हीं परंपराओं से रस ग्रहण कर आगे मनुष्य के विकास में कार्य करता है। भारतीय परंपरा अत्यधिक प्राचीन है। भारतीय परंपरा जिसमें उसके धर्म, संप्रदाय, जाति आदि विद्यमान है, न केवल विविधोन्मुखी है बल्कि इससे एक महान देश की छवि भी सामने आती है जिसका नाम भारत है।

''भारत के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में धार्मिक आन्दोलन एक लक्षण बनकर रहे हैं। समय—समय पर पूर्व वैदिक और वैदिक धर्म, बुद्ध और महावीर द्वारा संचालित अरूढ़िवादी धार्मिक विचार और ईश्वरवादी

धर्म (भक्ति आन्दोलन सहित) उभरकर सामने आए। रूढ़िवादी ब्राह्मणवाद के घटकों के रूपमें वैष्णववाद, शैववाद और शक्तिवाद जैसे धार्मिक संप्रदायों का जन्म हुआ। धर्म की इन शाखाओं के अतिरिक्त अनेक लोक पंथ और धार्मिक क्रियाओं का उद्भव भारत के विभिन्न भागों में हुआ।''[33]

1.6.1 **हिन्दू धर्म** :भारत का प्राचीनतम धर्म हिन्दू धर्म या वैदिक धर्म है। यह मुख्यतः ग्राम सभ्यता पर आधरित था। ऋग्वेद इसकी मुख्य धार्मिक रचना थी। ऋग्वेद में जो देवता हैं वे प्रकृति केनाना रूपों और शक्तियों के प्रतीक हैं। इन्होंने कई देवताओं जैसे सूर्य, इन्द्र, वायु, सोम, अग्नि आदि के पूजा करते थे। इनके यहॉ देवियां लक्ष्मी, सरस्वती आदि की भी पूजा होती है। इन्हें यहॉ वर्णाश्रम व्यवस्था मौजूद थी। समाज चार भागों में बंटा था – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनके यहॉ आश्रम व्यवस्था भी निर्दिष्ट की गई है जिसमें व्यक्ति बाल्यावस्था से विद्यार्थी तक ब्रह्मचर्य आश्रम में रहता है, बाद में गृहस्थ आश्रम में, फिर वानप्रस्थ आश्रम और अन्त में सन्यास आश्रम में रहता है। यह मूर्तिपूजा करने वाले हैं। इनकी कई प्रसिद्ध रचनाएॅ हैं – महाभारत, रामायण, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वेद, पुराण, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि। ''हिन्दू धर्म किसी कठोर और सुनिश्चित आचार पद्धति पर भी आश्रित नहीं है। इसलिए वह नवीन तत्वों को आत्मसात करके अपनी संपन्नता को बढ़ाने की क्षमता रखता है। इस क्षमता का कारण यह है कि इस समुदाय का विकास विभिन्न सांस्कृतिक इकाईयों के सम्मिश्रण और समन्वय से हुआ।''[34]

1.6.2. **जैन धर्म**: 'जिन' शब्द का अर्थ है जीत लिया है राग द्वेष जिसने। जैन धर्म इस अर्थ में एक नास्तिक दर्शन है कि वह सृष्टिकर्ता के रूप में

ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करता। जैन धर्म में मोक्ष जीवन का चरम लक्ष्य है। ''जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक प्राणी अपने आपमें अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य रूप है। बाह्य प्रभाव के बधा के काराण उपर्युक्त गुण अवरुद्ध है। वह है – (1) मिथ्यतत्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग।''[35]इनके पॉच मुख्य व्रत हैं जो यह जैन भिक्षु बनते वक्त इन्हें लेने होते हैं – अहिंसा, सत्य भाषण, त्याग, अपरिगृह, ब्रह्मचर्य। इनके गुरु तीर्थंकर होते हैं। उन्हें यहॉ पूजा जाता है।

1.6.3 **बौद्ध धर्म**: इस मत के संस्थापक गौतम बुद्ध हैं जिनका जन्म 567 ई.पू. लुंबिनि नामक स्थान पर हुआ। इनका नाम सिद्धार्थ था जो बाद में दिव्य ज्ञान की प्राप्ति के बाद बुद्ध बन गए। बुद्ध ने जिस सत्य की प्राप्ति की थी उसको इन्होंने 'आर्य सत्य' कहा और उसे चार भागों में विभक्त करके जनता को उपदेश के तौर पर दिया। वह इस प्रकार हैं –

(1) पहला आर्य सत्य है दुख। अर्थात् जीवन दुखों से भरा हुआ है। जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, प्रिय – वियोग तथा अप्रिय की प्राप्ति आदि सभी दुख।

(2) दूसरा आर्य सत्य है कि दुख अकारण नहीं है, दुख का कारण है।

(3) तीसरा आर्य सत्य है कि दुख से छुटकारा मिल सकता है।

(4) और चौथा आर्य सत्य है दुख से छुटकारा पाने के लिए उचित आचरण जिसे अष्टांगिक मार्ग कहा जाता है। वह है – जीवन के प्रति

सम्यक दृष्टि, मन से सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक उद्योग, सम्यक स्मृति, सम्यक आजीविका, सम्यक ज्ञान तथा सम्यक समाधि ।

1.6.4. **परसी धर्म**: यह मसीही धर्म है। 'जंद अवेस्ता' इनका धर्म ग्रन्थ है। ईरान और फारस में जब इस्लाम धर्म का आक्रमण हुआ तब धार्मिक अत्याचारों से बचने के उद्देश्य से बहुत से पारसी भारत में शरण ली और भारत के पश्चिमी भाग में आकर बस गए। तब से अब तक पारसी समाज व्यापक भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। ''इनके प्रवर्तक जरथुस्त्र मसीहा हैं जिनका जन्म ईसा से छः सौ वर्ष पहले माना जाता है। यह अग्नि की पूजा करते हैं।''[36]इस प्रकार देखें तो जरथुस्त्र यज़वानी ने धर्म में नैतिक पवित्रता को सर्वोपरि स्थान दिया है।

1.6.5. **ईसाई धर्म**: इनके प्रवर्तक ईसा मसीहा हैं। इनका जन्म एक यहूदी परिवार में हुआ था। इन्होंने अहिंसा, प्रेम, सद्भाव, त्याग आदि गुणों को जीवन में स्वीकार करने का उपदेश दिया। इनका मत एकेश्वर का था। अंग्रेजों के आगमन से यह धर्म भारत में प्रवश करता है। इनका ग्रन्थ बाइबल कहलाता है।

1.6.6. **इस्लाम धर्म**: यह मत भी एकेश्वर वाला है। हज़रत मुहम्मद इनके प्रवर्तक थे। इनका पुण्य ग्रन्थ कुर्आन है। यह धर्म मुगलों के शासन काल में भारत में अधिक व्याप्त हुआ।

1.6.7. **सिक्ख धर्म**: सिक्ख धर्म के आदि प्रवर्तक गुरू नानकदेव हैं। इनका जन्म पन्द्रह अप्रैल सन् 1469 को राइभोई तलवाड़ी में हुआ था। ईर्ष्या, द्वेष, वैर–विरोध, लोभ–मोह तथा अशान्ति से संत्रस्त विश्व को शान्ति–संदेश देने के लिए इन्होंने चार यात्राएँ की; इन यात्राओं में ये

हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों के तीर्थस्थलों में गए। इनके धर्म के प्रचार प्रसार में इनको मिलाकर दस गुरू हुए। इनमें गुरू अर्जुनदेव, गुरू तेगबहादुर तथा गुरू गोबिन्द सिंह को विशेष ख्याति प्राप्त है। यह एकेश्वरवाद पर विश्वास करते हैं। इनका प्रमुख ग्रन्थ 'गुरूग्रन्थसाहब' है।

इन प्रमुख धर्मों के अलावा कई जाति, संप्रदाय तथा जनजातियॉ भी हैं जिसने भारतीय परंपरा की नींव को डालने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारत के हर विचार, विश्वास, प्रथाएँ, व्यवहार–प्रकार, जीवन–मूल्य और संस्थानिक रूपजो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दिए गए, भारत की परंपरा के परिधि में आते हैं।संस्कृति और सभ्यता दोनों वर्तमान के लिए अतीत से बहुत कुछ लेती है और अपने अनेक तत्व भविष्यत् को भी देती हैं। दोनों की प्रक्रिया और उत्पादन में परंपरा का योगदान महत्वपूर्ण होता है। ''संस्कृति और सभ्यता ऐतिहासिक प्रक्रियाएँ हैं और उनके परिणाम भी। दोनों की संरचना के लिए परंपराएँ अनिवार्य हैं।''[37] यह परंपराएँ अतीत के संचित ज्ञान हैं। ऐसे बहुत सारे संप्रदाय हैं जिसने परंपरागत दृष्टि से भारत की संस्कृति को संपन्न बनाया है। वह है – वैष्णव संप्रदाय, शैव संप्रदाय, शाक्त संप्रदाय, चार्वाक संप्रदाय आदि। इन सब धर्म एवं संप्रदाय के परिणामस्वरूप जो दर्शन इनसे उद्‌भूत हुए वह भी परंपरा के दायरे में आते हैं। ऐसे भारतीय महान दर्शनों में जैन, बौद्ध, चार्वाक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक आदि दर्शन उल्लेखनीय हैं। भारत की परंपरा उसके धर्म, जाति, जनजाति, दर्शन, साहित्य, कला और भाषा में मौजूद है और यहीं से हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है।

1.7. भारतीय संस्कृति : इतिहास– संबंधी विश्लेषण

भारत का इतिहास बहुत विस्तृत है। यहॉ देशी–विदेशी धर्म एवं जाति व भाषा का संगम स्थल है। यहॉ समन्वय की भावना विद्यमान है। भारतीय संस्कृति की विकास प्रक्रिया अविराम और प्रगतिशील रहा है। अतः इस प्रक्रिया में इतिहास की बड़ी भूमिका रही है। भारत भूमि का इतिहास सिंधू–घाटी की सभ्यता से माना जा सकता है क्योंकि उससे पहले का इतिहास स्पष्टतः प्राप्त नहीं होता है। भारत का इतिहास यह स्पष्ट रूप से हमें दर्शाता है कि यह एक देश या राष्ट्र नहीं बल्कि कई जातियों, भाषाओं, समूहों से बना है जो विविध कालखण्ड में यहॉ आए और इस ज़मीन में बस गए। इसी प्रक्रिया में कई जातियॉ आपस में घुलमिल कर आज के भारत का रूप ग्रहण किया है। ''भारत मात्र एक देश नहीं, राष्ट्र नहीं। इसका भौतिक स्वरूप प्राचीनकाल से लेकर आज तक स्खलित एवं खंडित होता रहा है। किन्तु अनगिनत आघातों–पत्याघातों को सहन करते हुए भी भारत समस्त भारतवासियों के मानस में एक अपराजय शक्ति के रूपमें, ममतामयी देशमाता के रूपमें सर्वदा ही संपूर्ण एवं नमस्य रहा है।''[38]भारत की ऐतिहासिक दृष्टि से आंकलन करते समय आधुनिक भारत के निर्माण में समय–समय पर कई संस्कृतियों की महत्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है जिसने भारतीय समाज और संस्कृति के विविधोन्मुखी स्वरूप को आकार दिया है। भारत का इतिहास और यहॉ की संस्कृति कई हज़ार सालों से बनती आई है और आज भी उसकी धारा थमी नहीं है। भारत के इतिहास पर एक दृष्टि–

1.7.1. **सिंधू–घाटी की सभ्यता**: 1925 ई. के लगभग पुरातत्ववेत्ताओं को खुदाई के दौरान सिंधू – घाटी सभ्यता जैसे पुरातन सभ्यता का ज्ञात हुआ। मोहनजोदाड़ो और हड़प्पा इसके दो प्रमुख स्थान थे। यह नगर सभ्यता थी। यह कम से कम 3000 ई.पू. प्राचीन नगर थे। यह सुनियोजित नगर थे। यहॉ पकी हुई ईंटों से बनी मकानें थीं, चौड़ी सड़कें थीं, सड़कों के दोनों ओर नालियॉ थीं, बड़े स्नानागार थे, विशाल अन्न भंडारागार थे। इनका मिस्त्र, ईरान, अरब आदि से व्यापारिक संबंध था। व्यापार का मार्ग समुद्र था। इनकी प्रतिरक्षाशीलता दुर्बल रही होगी क्योंकि इनके यहॉ न तो बड़े दुर्ग थे और न ही मज़बूत हथियार। यह लड़ाकू न होकर अधिक परिष्कृत थे। इनका सार्वजनिक जीवन सुखमय और आमोद प्रमोद युक्त था।

मोहनजोदाड़ो तथा हड़प्पा की खुदाइयों में मिट्टी की अनेक मूर्तियॉ मिली हैं जिनसे यह अनुमान होता है कि इस सभ्यता में धर्म का वह रूप विकसित हो चुका था जिसमें मातृसत्ता को एक सार्वभौम शक्ति के रूप में पूजा जाता था। ''अभी तक सिंधू – घाटी की खुदाई में कोई मंदिर अथवा सार्वजनिक पूजा–स्थल नहीं मिला। इससे प्रमाणित होता है कि मातृदेवी की पूजा एक पारिवारिक आचार रहा होगा।''[39]

इनके खान–पान में मटर, तिल, गेहूं आदि दाने तथा बैल, भेड़, सुअर, मुर्गी, घड़ियाल तथा मछलियॉ शामिल थीं। यह कपास की खेती करते थे। सूती वस्त्र धारण करते थे। इनका सबसे बड़ा उद्योग कृषि था। इस प्रकार सिंधू – घाटी की सभ्यता एक पर्याप्त समुन्नत सभ्यता

प्रमाणित होती है। इस सभ्यता की बहुत सी बातें भारत के जन–जीवन में अब तक व्याप्त हैं।

1.7.2. **आर्यों का आगमनः** सिंधू – घाटी सभ्यता का पतन किस प्रकार हुआ यह स्पष्ट नहीं है। परन्तु इस महान नगरीय सभ्यता के पतन के बाद ऐसी सभ्यता का उदय होता है जो कृषि व गॉव पर केन्द्रित है। सिंधू – घाटी सभ्यता के पतन के तकरीबन हज़ार साल के बाद आर्यों का आगन अवधि माना जाता है। यह उत्तर पश्चिम से आने वाली ग्राम केन्द्रित जाति थी। इनके यहॉ धर्म और दर्शन की भली भांति विकास हो चुका था। दुनिया के प्रथम लिखित साहित्य चार वेदों को माना जाता है जो आर्यों की देन थी। इनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। इनके बाद ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, पुराण आदि लिखे गए। ''वेदों में मंत्रों का स्थान सर्वप्रथम है। मंत्रो की व्याख्या के लिए 'ब्राह्मण' ग्रंथ लिखे गए जिनमें शतपथ ब्राह्मण, कौतकी ब्राह्मण आदि प्रसिद्ध हैं। इनमें कुछ भाग गंभीर चिंतन तथा उपासना के कार्य के लिए हैं। ऐसे चिंतनप्रधान साहित्य को 'आरण्यक' का नाम दिया गया। जिस ग्रंथ में तत्वज्ञान की चर्चा विस्तार से की जाती है उसे 'उपनिषद्' कहते हैं। उपनिषद् वेदों के अंतिम अंश हैं। अतः उन्हें 'वेदांत' भी कहते हैं।''[40]

1.7.3. **आर्य और द्रविड़ संस्कृतिः** आर्य जाति अपने साथ वेद, उपनिषद् आदि धर्म ग्रन्थ लाए। आर्यों की सार्वजनिक जीवन श्रम प्रधान था। आर्यों में पहले जाति प्रथा नहीं थी। इनके यहॉ सामाजिक व्यवस्था के लिए समितियॉ व सभाऍं गठित होती थी। शासन के लिए प्रतिभाशाली पुरूष चुने जाते थे। सभा का अध्यक्ष होता था। धार्मिक कार्यों को संपन्न करने

के लिए पुरोहित चुने जाते थे इनके यहॉ प्रमुख आराध्य देवी–देवताएॅ थे – इंद्र, वरूण, सूर्य, भूमि, वायु, अग्नि, विष्णु आदि।

द्रविड़ संस्कृति पुरातन संस्कृतियों में से एक है। यह दक्षिण भारत व दक्षिण पूर्व एशिया के हिस्सों में मुख्यतः वास करते थे। इनका संबंध सिंधू – घाटी सभ्यता से थी। इसका सूचक ब्रॉही भाषा है जो बलूचिस्तान के कुछ हिस्सों में बोली जाती है जिसके पचास प्रतिशत शब्द द्रविड़ से है। इनका सबसे पुरातन साहित्यिक ग्रन्थ 'संगम साहित्य' है। 'तोलकापियम', 'अंगदीयम' जैसे ग्रन्थ भी लिखे गए जिसमें द्रविड़ भाषा व व्याकरण का विस्तृत विवेचन है। इनके यहॉ सूती की खेती होती थी। इनके यहॉ कपास, ऊन, कपड़ों की रंगाई, सोने और चांदी के आभूषण, मोती आदि का उद्योग होता था। इनका मातृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था थी। इनमें जाति व्यवस्था नहीं थी। पेड़, कापालिक, नाग आदि इनके आराध्य थे।

1.7.4. **वैदिक संस्कृतिः** आर्य और द्रविड़ संस्कृति का प्रभाव भारत के अन्य संस्कृतियों पर भी पड़ा और यह आपस में घुलमिल कर वैदिक संस्कृति का रूप लिया। उत्तर और दक्षिण के कई जाति व पंथ के बीच अपनी विचारधाराओं, सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक प्रथाओं आदि का आदान–प्रदान हुआ। इसी काल में रामायण और महाभारत जैसे महान ग्रन्थ लिखे गए जो बाद में संपूर्ण भारत का साहित्य बनकर उभरा। हिन्दू धर्म का सुस्थिर गठन इसी काल में होता है। यह धर्म चार जातियों में बांटता है– ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र। फिर भी इसका नाम हिन्दू नहीं था। यह आर्य धर्म के नाम से जाना जाता था। कहीं इसे वैदिक धर्म

भी कहते थे। हिन्दू शब्द का उत्भव बाद में होता है। ''भारत में धर्म के लिए सबसे पुरातन उपयुक्त पद आर्य धर्म है। धर्म सही अर्थों में एक विस्तृत क्षेत्र है। इसकामूल अर्थ एक साथ रखना, यह एक वस्तु की अन्दरूनी गठन है; उसके अन्दर का अनुशासन है। यह एक नैतिक संकल्पना है जिसमें आचार संहिता, सदाचार और एक व्यक्ति के कर्म और उत्तरदायित्व का पूरा लेखा जोखा है।''[41]अतः वैदिक धर्म में न सिर्फ आर्य जाति बल्कि द्रविड़, मिस्र, युनान, भारत के भू भागों में स्थित नई जनजातियॉ, कबीलों आदि के आचार–विचारों का सम्मिश्रण है।

1.7.5. **मुगलों का आगमनः** हालांकि इस्लाम भारत भूमि में सिंधू – घाटी की सभ्यता से ही मौजूद है और बाद में अरब, पठान आदि आक्रमणकारियों के रूप में यहॉ आए परन्तु इस्लाम धर्म की भारत में स्थापना और प्रचार–प्रसार मुगलों के आगमन के पश्चात् होता है। बाबर के दिल्ली जीतने के बाद पूरे भारत में मुगलों का सलतनत कायम हुआ। इनमें सबसे प्रसिद्ध सम्राट अकबर हुए। मुगलों के आने के बाद भारतीय समाजमें इस्लाम का प्रभाव पड़ा। संगीत, साहित्य, कला, स्थापत्य आदि में हिन्दू, मुगल व फारसी शैली का मिश्रण हुआ। धर्म और कला एक दूसरे के घेरे को लांघकर एक दूसरे में घुलमिल गए।

1.7.6. **अंग्रेजों का आगमनः** अंग्रजों का ईस्ट इंडिया कंपनी के रूप में आगमन हुआ। इसाई धर्म सदियों पहले भारत भूमि में आ चुका था परन्तु अंग्रजों केपहले एक व्यापारी, फिर आक्रमणकारी और बाद में शासक के रूप में आने से भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था में बड़े बदलाव आए। इसाई धर्म के प्रचार–प्रसार, औद्योगिक क्रान्ति, पाश्चात्य ज्ञान

विज्ञान आदि ने भारतीय समाज में अपना गहरा प्रभाव छोड़ा। यह शिक्षा व्यवस्था के ज़रिए इतना कारगर हो पाया। आज स्वतंत्रता के इतने साल के उपरांत भी हम अंग्रज़ोंसेपूरी तरह प्रभाव मुक्त नहीं हो पाए हैं।

1.8. **अस्मिता का स्वरूपः**अस्मिता व्यक्ति व समूह के व्यवहार, नैतिक मूल्य, दर्शन, धर्म, सामाजिक गठन आदि का एक सम्मिलित रूप है। यही उसके संस्कृति का भी हिस्सा है। अस्मिता को अंग्रजी में 'आइडेंटिटी' कहते है जिसका अर्थ है–एक व्यक्ति या समूह का दूसरे व्यक्ति या समूह से की गयी अभिव्यक्ति।दूसरे शब्दों में ''अस्मिता व्यक्ति या समूह कीअभिव्यक्ति, आदर्शों, गुणों, विश्वासों, धर्मों, व्यवसायों, जातियों आदि का समाहार है।''[42]यह वैयक्तिक व सामूहिक अनुभवों, संबंधों का आदान–प्रदान है व व्यक्ति और समूह के प्रति उत्तरदायित्व की पहचान है।

अस्मिता व्यक्ति या समूह के भूतकाल के बारे में तथा उसका भविष्य कैसा होगा, इसका निर्धारण करती है। यह व्यक्ति या समूह के सामूहिक व सांस्कृतिक संरचना को गठता है। यह आत्मज्ञान व सामूहिक ज्ञान का एक पुंज है जहॉ से वह आननेवाले पीढ़ि को उस ज्ञान का हस्तांतरण होता है। यह व्यक्ति और समूह के चुनाव को भी प्रभावित करमा है। इसका संबंध व्यक्ति या समूह के वास–स्थान व उनसे संबंधित प्राकृतिक परिवेश से भी होता है। उसके व प्रकृति के बीच के संबंध को भी निर्धारित करता है। अस्मिता का व्यक्ति या समूह के हर पहलू जैसे उसका व्यवसाय, आचार–विचार, मूल्य, परंपरा, धर्म आदि, में प्रतिफलन होता है।

1.9 निष्कर्ष

भारत की संस्कृति और उसका इतिहास अत्यंत विशाल और समृद्ध है। भारत के मूल्य, परंपरा और इतिहास यह दर्शाते हैं कि भारत भूमि कभी भी कोई एक संस्कृति या विचारधारा या धर्म का नहीं रहा है। भारत में कई जातियॉ आईं और यहॉ बस गईं। वह यहीं के होकर रह गए। इसलिए भारत की संस्कृति विविधोन्मुखी है। उसे एक संस्कृति नहीं बल्कि कई संस्कृतियों का संगम स्थल कहना उचित होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो. रघुवंश – मानवीय संस्कृति का रचनात्मक आयाम, पृ.सं. –15
2. समकालीन भारतीय साहित्य (पत्रिका) – मार्च–अप्रैल 2010, पृ. सं.–145
3. श्यामवृक्ष मौर्य – समाज दर्शन और राजनीति, पृ.सं.–30
4. रामधारी सिंह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय, पृ.सं.–21
5. श्यामचरण दुबे – परंपरा और परिवर्तन, पृ.सं.–129
6. वही, पृ.सं.–120
7. श्यामचरण दुबे – समय और संस्कृति, पृ.सं.–14
8. गजानन माधव मुक्तिबोध – भारत : इतिहास और संस्कृति, पृ. सं.–276,277
9. वही, भूमिका
10. डॉ. बैजनाथ पुरी –भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य, पृ.सं.–2
11. डॉ. विजय अग्रवाल, हेमलता श्रीवास्तव – भारत की सांस्कृतिक विरासत, पृ.सं.–30
12. श्यामचरण दुबे – समय और संस्कृति, पृ.सं.–25
13. रामधारी सिंह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय, प्रस्तावना
14. सोती विरेन्द्र चन्द – भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, पृ.सं.–15
15. नरेन्द्र मोहन – भारतीय संस्कृति, पृ.सं.–5
16. हरिवंश तरूण – भारत की राष्ट्रीय एकता, पृ.सं.–94
17. विंसेट ए स्मिथ –द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ.सं.–7
18. हरिवंश तरूण – भारत की राष्ट्रीय एकता, पृ.सं.–94,95

19. हरिदत्त वेदालंकार – भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ.सं. –295
20. सोती विरेन्द्र चन्द – भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, पृ.सं.–15
21. हरिवंश तरूण – भारत की राष्ट्रीय एकता, पृ.सं.–96
22. डॉ. किरण टण्डन – भारतीय संस्कृति, पृ.सं.–16
23. महाभारत–आदि पर्व
24. वही
25. हरिदत्त वेदालंकार – भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ.सं. –296
26. वैशेषिक मीमांसा – 1.1.2
27. हरिदत्त वेदालंकार – भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ.सं. –297
28. हरिवंश तरूण – भारत की राष्ट्रीय एकता, पृ.सं.–57
29. वाचस्पति गैरोला – भारतीय संस्कृति और कला,पृ.सं.–79
30. डॉ. शशिप्रभा कुमार – भारतीय संस्कृति : विविध आयाम, पृ.सं. –7
31. वही, पृ.सं.–27
32. वही, पृ.सं.–28
33. के.एल. शर्मा भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन, पृ.सं.–11
34. डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय–भारतीय जीवन और संस्कृति, पृ.सं.–116
35. डॉ. शशिप्रभा कुमार – भारतीय संस्कृति : विविध आयाम, पृ.सं. –118

36. डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय – भारतीय जीवन और संस्कृति, पृ.सं. –135
37. श्यामचरण दुबे – परंपरा और परिवर्तन, पृ.सं.–130
38. हरिवंश तरूण – भारत की राष्ट्रीय एकता, पृ.सं.–100
39. डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय – भारतीय जीवन और संस्कृति, पृ.सं.–34
40. वही, पृ.सं.–38
41. पंडित जवहरलाल नेहरू – दी डिस्कवरी ऑफ इंडिया, पृ.सं. –70
42. www.wikipedia.com

Pradeep Raj P. “ Search for the cultural identity of India in contemporary Hindi poetry (With special reference to 1980-2000)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2017

दूसरा अध्याय

भारत का सांस्कृतिक परिवेश : सन् 1980 के बाद

मनुष्य की संस्कृति उसके श्रम का परिणाम है। यह संस्कृति उसके चारों ओर के दृश्य व अदृश्य जगत को समग्रता में ग्रहण करने की उसकी आकांक्षा की अभिव्यक्ति है। इस तरह संसार को जानने, पहचानने और परखने की दृष्टि से किए गए संघर्ष के परिणामस्वरूप संस्कृति का वृक्ष फूलता–फलता है। वह अपनी जड़ों को मिट्टी की गहराईयों में तथा शाखाओं को आकाश के विस्तार में फैलाता है। ''उसका भौतिक संसार कैसा बना है, इसका विस्तार क्या है और इसके साथ वह कैसे जुड़ा हैं इसी से दर्शन और विज्ञान का जन्म होता है। उसका सौन्दर्य बोध इसे किस रूप में देखता है और ग्रहण करता है। इसी से कलाओं और साहित्य का जन्म होता है। इस संसार से और फिर अपनी प्रजाति के अन्य व्यक्तियों से उसका क्या नैतिक संबंध हैं इससे नैतिक आदर्शों और धर्म का जन्म होता है। इन तीनों आयामों, उसकी सर्जनात्मक शक्ति एक सर्वांगीण संसार का निर्माण करती है, जो समय के साथ विस्तार पाता जाता है।''[1] ये सभी मानव के सांस्कृतिक विकास के विभिन्न पहलू हैं।

भारत की सांस्कृतिक विकास का कलेवर बहुत विस्तृत है। यहॉ प्राचीनकाल से ही विभिन्न संस्कृतियों के आने और यहॉ की मूल संस्कृति में घुलमिल जाने की प्रवृत्ति विद्यमान रही है। अतः भारत का सांस्कृतिक परिवेश खण्डित रहा है। फिर भी भारतीय संस्कृति का मूल स्वभाव–स्वीकार करते हुए विस्तार पाना बना रहा। भारत की सांस्कृतिक अस्मिता को निर्धारित करने में जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गॉधी, बी. आर. अंबेडकर, सरदार पटेल, गोपालकृष्ण गोखले, बालगंगाधर तिलक, जैसे

महान व्यक्तियों ने प्रयास किया है। इन्होंने भारत की सांस्कृतिक भिन्नता को ध्यान में रखते हुए स्वतंत्र भारत को एक ऐसा संविधान दिया जिसकी आधारशिला भिन्नता में एकता को कायम रखना तथा उस पर आधारित राष्ट्र का निर्माण करना है। विश्व के अन्य राष्ट्र को उदाहरण स्वरूप पेश करते हुए भारत की अस्मिता को पहचानना कठिन है। भारत की सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान को चिन्हित करने के लिए विभिन्नता की पहचान, तत्पश्चात् भागीदारी और उससे उत्पन्न समभाव या समानता का सही ज्ञान आवश्यक है।

सन् 1980 के बाद के भारत का सांस्कृतिक परिवेश का अंकन उसके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति के अध्ययन से होगा।

2.1.सामाजिक परिस्थिति और अस्मिता

भारतीय समाज इतना वैविध्यपूर्ण है कि उसे किसी वर्ग विशेष, जाति विशेष आदि विभाजनों से भी कभी कभार अभिहित और पहचाना नहीं जा सकता। इसका मुख्य कारण यहॉ की सामाजिक गठन हैं।यहॉ समान जातियों में भी कहीं–कहीं क्षेत्र की भिन्नता के कारण भाषायी अभिव्यक्ति में भिन्नता देखी जा सकती है। यहॉ जातीय समूह, उनकी भाषायी अभिव्यक्ति, उनके परंपरागत आचार–विचारों को जाने बिना तथा उनकी आपसी संबद्धता को सही अर्थों में पहचाने बिना देश के बड़े कलेवर में उनका स्थान चिन्हित करना कठिन है। यही कठिनाई स्वतंत्र भारत के सरकार के सामने थी। परन्तु नेता वर्ग अपने स्वार्थ लाभ को साधने के लिए इन क्षेत्रों के संबंध में नवीन दृष्टिकोण को अपनाने के

बजाए औपनिवेशिक शासन व्यवस्था को हू–ब–हू अनुसरण किया। वह औपनिवेशिक शासन व्यवस्था जिसने अपने प्रशासनिक कार्य को सुगमता से आगे बढ़ाने हेतु कई जातीय व जनजातीय समूहों की पारंपरिक सामूहिक व्यवस्था को जड़ से उखाड़ दिया।

ट्राइबल शब्द की उत्पत्ति औपनिवेशिक काल में हुआ है। इन्हें सामान्य से अलग केवल इनके आवासीय क्षेत्र के कारण देखा गया बल्कि यह भारतीय प्रान्त के वह लोग हैं जो बाहर से आकर यहॉ के समाज में घुलमिल गए जातियों की तुलना में पहले से यहॉ मौजूद है। इन बारीकियों को देखे बिना केवल औपनिवेशिक व्यवस्था तथा उनके कानून व नियमावलियों का यहॉ के सरकार द्वारा अनुसरण ही एक बड़ी नाकामयाबी थी। कई सरकारी नियम जो इस भारतीय समूह को बॉधे हुए हैं, वह महज़ औपनिवेशिक शासन प्रणाली के अवशिष्ट हैं। ''उत्पादन व्यवस्था का सुविचारित असमानता, जनजातियों को जानबूझकर जबरन पृथक रखने और विडम्बना से, आधुनिक यातायात के विकास प्रक्रिया जो पारंपरिक व्यवसाय मार्गों और प्रणालियों को परिवर्तित और यहॉ तक की उसे नष्ट कर दिया, औपनिवेशिक नीति का हिस्सा था जिसने जातियों के बीच मिश्रण और एकीकरण की प्रक्रिया को त्वरित करने के बजाए अलगाव की स्थिति को प्रोत्साहित किया और कुछ मामलों में अलगाव की स्थिति को उत्पन्न भी किया।''[2]एक ही जनजातीय समूह भारत के कई हिस्सों में पाए जाते हैं जो इनके आवागमन को दिखाता है। कई जगह साधारण किसानों और इनके बीच विशेष भिन्नता पाई नहीं जाती। यह सारे तथ्य यह दिखाता है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था के परिवर्तन की

प्रक्रिया में यह समूह दूसरों की भॉति ही एक सामान्य अंग है जिसे सरकार ने अनदेखा कर दिया।

भारत की संस्कृति ने यहॉ की जनता को समान अवसर दिया है। एकता में अनेकता एक ऐसा तथ्य है जिसका सीधा संबंध हर तबकेकी जनता की समान भागीदारी है। परन्तु जिस तेजी से देश में सांप्रदायिकता बढ़ी है, क्षेत्रवाद बढ़ा है, इसका मुख्य कारण यहॉ की राजनीतिक विफलता है। इस विफलता का परिणाम 1975 के आपातकाल से आरम्भ होता है। भारत की संस्कृति को मद्देनजर रखते हुए, यहॉ के संविधान का गठन किया गया था, क्योंकि इसमें धर्मनिरपेक्षवाद, समाजवाद और लोकतंत्र के प्रमुख आदर्शों को उद्घोषित किया गया है। भारत की संस्कृति विभिन्न सामाजिक–आर्थिक समूहों के बीच की अन्तर्निर्भरता का उदाहरण पेश करती है। ऐसा नहीं है कि भारत की जनता उसके एक देश या राष्ट्र के रूप में उभरने तक की प्रक्रिया में संघर्ष का सामना न किया हो। कई समय तक भारत विदेशी आक्रमण को सहा है। इस दौरान कई विदेशी जातियों का आगमन हुआ। तत्पश्चात् अंग्रेजों के हुकूमत के तले दबा पड़ा। परन्तु भारत की सामाजिक व्यवस्था ने आपसी आदान–प्रदान के ज़रिए अपनी अस्मिता को बनाए रखा। स्वातंत्रोत्तर भारत की स्थिति भिन्न है। यहॉ सामान्य जनता के लिए सामाजिक व्यवस्था एवं न्याय व्यवस्था बद्तर होती जा रही है। ''स्वातंत्रोत्तर भारत में वितरित न्याय के अभाव के कारण नए प्रकार की सामाजिक और आर्थिक विसंगतियॉ उभरी हैं। विकास के कार्यक्रमों द्वारा दलितों और वास्तव में सामाजिक और आर्थिक प्रगति की आवश्यकतापरक लोगों के बजाए परंपरागत समृद्ध लोगों को अधिक लाभ

हुआ है।''[3] इस अव्यवस्था के कारण भारत के इतिहास में बहुत सी अप्रिय घटनाएँ हुईं जिसने भारत की सामाजिक व्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला, यथा 1970 के दशकों में कांग्रेस सरकार के विरुद्ध जन आक्रोश, 1975 में आपातकाल की घोषणा, खालिस्तान की मांग, ब्लू स्टार ऑपरेशन, प्रधानमंत्री इंदिरा गॉधी की हत्या, सिक्ख हत्याकाण्ड, सोवियत यूनियन का विघटन, आर्थिक तंगी, उदारीकरण, बाबरी मस्जिद का खण्डन, इस्लाम व हिन्दुत्व उग्रवादियों का पुनरुत्थान, सांप्रदायिक दंगे, काला धन। यह पूरी घटना भारत के सेक्यूलर समाज के लिए एक बहुत बड़ा झटका था।

70 के दशक में सरकार के विरुद्ध आम आदमी का आक्रोश उमड़ पड़ा। जगह–जगह आम लोगों व छात्रों का प्रदर्शन होता रहा। जयप्रकाश नारायण ने पूरे भारत में संपूर्ण क्रांति का नारा छेड़ा। इनके फलस्वरूप 1975 में आपातकाल की घोषणा हुई। प्रधानमंत्री इंदिरा गॉधी ने सरकार के विरुद्ध उठने वाले हर आक्रोश का दमन किया और उन्हें कारावास में डाल दिया। 1977 में आपातकाल का अन्त हुआ। तत्पश्चात् आम चुनाव मेंभारत के राजनीतिक इतिहास में पहली बार गैर कांग्रेस–जनता पार्टी को जीत हासिल हुई। इन ऐतिहासिक घटनाओं ने आगे चलकर भारत के सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य को बदल डाला। परन्तु आपातकाल के पूर्व जो भ्रष्टाचार, भुखमरी, आर्थिक तंगी, किसानों के आत्महत्या, निम्न जाति व वर्ग का शोषण, सांप्रदायिकता, बेरोज़गारी आदि थी, वह आपातकाल के बाद भी पूरे भारतीय समाज में महामारी की तरह फैलती गई।

1980 के बाद के वर्ष ऐसे थे जिनमें भारत अपनी समाजवादी रुख से कुछ परे हो रही थी। सार्वजनिक क्षेत्र में निजी विदेशी कंपनियों पदार्पण कर रही थी। भारत के सरकारी, गैर सरकारी तथा निजी क्षेत्र में विदेशी कंपनियों का हिस्सा (शेयर) बढ़ाने के देश की सरकार के फैसले से मंडी में ऐसे बदलाव आए जिसने भारतीय समाज को गहराई से प्रभावित किया। इसका एक रूप यह है कि मारुति, बजाज जैसे कंपनियॉ देश के आम लोगों के बीच सामान्य हो गईं। इस समय मीडिया, विशेषकर दूरदर्शन, ऑल इंडिया रेडियो अपने कार्यक्रमों के ज़रिए साधारण जनता (खासकर मध्य एवं उच्च वर्ग) में अपना पैठ जमा रही थीं। दूरदर्शन के ज़रिए धारावाहिक कार्यक्रम जैसे बी आर चोपड़ा द्वारा निर्मित 'महाभारत', रामानन्द सागर निर्मित 'रामायण', 'श्री कृष्ण' आदि लोकप्रिय संस्कृति (पॉपुलर कल्चर) का हिस्सा बन गई।

80 के दशक में पंजाब में संप्रदायवादियों ने सिक्खों के लिए एक अलग देश की मांग छेड़ी, जो खालिस्तान आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। इनके प्रवक्ता जगजीत सिंह चौहान और बलबीर सिंह संधु थे, जिन्होंने आगे चलकर लड़ाकू गुटों से मिलकर सरकार के खिलाफ युद्ध छेड़ दी। इसके परिणामस्वरूप इस विद्रोह को उस समय के प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गांधी ने ब्लू स्टार सैनिक ऑपरेशन के ज़रिए कुचल दिया। आगे चलकर प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गॉधी को उनकी अपनी सिक्ख अंगरक्षकों ने ही हत्या कर दी जिसके फलस्वरूप पूरे उत्तर भारत में खासकर दिल्ली में हज़ारों सिक्खों की हत्या कर डाली गई तथा उन्हें लूट लिया गया। इस घटना ने भारत की धर्मनिरपेक्षता की छवि पर गहरी चोट की। ''उस समय सिक्ख समूह पर जो आक्रमण हुआ और

तत्पश्चात् केन्द्र सरकार द्वारा सिक्ख आन्दोलन के दमन के लिए जो राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम (1980), पंजाब विक्षुब्ध क्षेत्र अध्यादेश (1983), सशस्त्र बल विशेष अधिकार अधिनियम (1983), आतंकवाद प्रभावित क्षेत्र (1984 का विशेष न्यायालय अधिनियम) को पारित किया गया, जिसने भारत के एक प्रत्येक समूह के जीवन व्यवस्था को ही उलट दिया।''[4]

भारत के सेक्यूलर मनस्थिति को दूसरा झटका तब मिला जब अयोध्या में 6 दिसम्बर 1992 को राम जन्म भूमि विवाद के तहत् बाबरी मस्जिद को तबाह कर दिया गया। इस घटना के उपरान्त पूरे भारत में अनगिनत जगहों पर हिन्दू–मुसलमान दंगे हुए जिसमें दोनों पक्षों के हज़ारों लोग मारे गए। इसके बाद आर एस एस, वी एचपी जैसे हिन्दुत्व गुटों ने हिन्दुत्व का प्रचार–प्रसार किया तो दूसरी ओर एक प्रकार की विशेष मुस्लिम अस्मिता का भी निर्माण किया जिसके फलस्वरूप पूरे भारत के मुसलमानों के सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक, राजनीतिक पक्षों को प्रबल बनाने हेतु कई संस्थाएं बनी। ''बाबरी मस्जिद की घटना और उसके कुछ साल बाद केन्द्र में बीजेपी सरकार आने से देश के अन्दर मुसलमानों में असुरक्षा का भाव उत्पन्न हुआ जिसके बाद मुस्लिम समाज में सामाजिक–राजनीतिक क्षेत्र में उनकी पहचान का होना आवश्यक समझा गया।''[5] 2002 में गुजरात में हुए गोधरा दंगे में हज़ारों मुसलमानों की हत्या की गई जिनमें महिला और बच्चे भी शामिल हैं। इन सभी घटनाओं ने भारत की धर्मनिरपेक्षता, सर्वधर्म समभाव, सांस्कृतिक आदान–प्रदान, भारतीयता आदि मूल्यों पर जो प्रहार किया, पूरे भारतीय समाज में उसका प्रभाव बहुत गहरा है।

1991 में सोवियत यूनियन के विखण्डन से भारत में ही नहीं पूरे विश्व में समाजवादी–साम्यवादी मूल्यों पर बड़ा गहरा असर पड़ा। 1992 की आर्थिक तंगीतथाउससे भारत की अर्थव्यवस्था को बचाने हेतु भारत सरकार ने उदारीकरण का रास्ता अपनाया जिससे भारतीय मंडी में अधिक से अधिक विदेशी कंपनियॉ तथा पूॅजी निवेश आईं। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज ज़्यादा उपभोगवादी समाज बन गया। समाज के विकास मेंआर्थिकपहलू को अधिक महत्व दिया जाने लगा। उच्च व निम्न वर्ग की खाई बढ़ती गई। भारत सरकार आई एम एफ व विश्व बैंक की नीतियों का अनुसरण करने लगा। इसका मुख्य कारण आर्थिक निर्भरता थी।

इस तरह देखें तो 1980 के बाद भारत के सामाजिक फलक में कई ऐसी घटनाएॅ हुईं जिसने भारत की सांस्कृतिक अस्मिता को चिन्हित करने और भारतीय समूह के सामने उसे प्रस्तुत किए जाने की चुनौती और बढ़ गई है। भारतीयता की सही पहचान इस उत्तर आधुनिक समय में अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक देश के रूप में भारत के तथा यहॉ की जनता का विकास आवश्यंभावी है।

2.2. **आर्थिक परिस्थिति और अस्मिता**

1980 के बाद भारत की विश्व बैंक, आई एम एफ, तथा निजी संस्थाओं से ले रहे कर्ज़ बढ़ता चला गया। भारत आर्थिक तंगी में फसता गया। आर्थिक विकास की सही देखरेख के अभाव में भारत की आर्थिक स्थिति बदतर होती गई। 1992 की आर्थिक तंगी के फलस्वरूप तत्काल वित्त मंत्री मनमोहन सिंह द्वारा भारत के आर्थिक ढॉचे में उदारीकरण की

नीति को अपनाए जाने के बाद तत्काल प्रगति के मार्ग तो खुल गए परन्तु लम्बी अवधि में वह भारत के सांस्कृतिक क्षरण का कारण बना। ''उदारीकरण के फलस्वरूप विदेशी पूँजी निवेश बढ़ने से सामग्रियों और पूँजीगत माल के कुल विदेशी विनिमय आगमन दर बढ़ गया जिससे निर्यात के क्षेत्र में निर्भरता बढ़ गई।''[6] आर्थिक स्थिरता को बनाए रखने हेतु सीमा शुल्क अधिक बढ़ाने के लिए आयात व्यवस्था को उदारीकृत कर दिया गया जिससे समस्या पर तत्काल नियंत्रण तो हासिल हुआ परन्तु आगे चलकर इसने निर्यात मूल्य को घटा दिया।

आर्थिक बदलाव में सामूहिक मनोविज्ञान एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। परन्तु भारत एक ऐसा देश है जहॉ वर्ग विभाजन से बढ़कर धर्म, जाति, क्षेत्र व भाषा आधारित विभाजन भी मौजूद है। भारत के हर समूह में अर्थ संबंधी मान्यता भिन्न है। सामग्री का मूल्य हर जगह एक समान नहीं है। 1980 के बाद भारत की आर्थिक स्थिति में जो गिरावट आई है, वह सरकार की आर्थिक नीति पर प्रश्न चिह्न लगाता है। सरकार जिस सामूहिक बदलाव को लाना चाहती थी, उसमें वह विफल साबित हुई। देश की सामाजिक व आर्थिक नीति ने देश भर की जनता में आक्रोश उत्पन्न किया। गॉव की अर्थव्यवस्था बद्तर होती गई। नौकरी की तलाश में गॉव से लोग लाखों की मात्रा में शहर की तरफ आने लगे। 1955 में भारत और चीन की अर्थव्यवस्था समान स्तर परथीं परन्तु बाद के दशकों में चीन की अर्थव्यवस्था भारत के कई गुणा आगे निकल गई। देश ने विकास नीति के लिए पश्चिमी देशों के नीति का अनुसरण किया। परन्तु भारत की सामूहित व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पश्चिमी

देशों से भिन्न था। बेरोज़गारी और महॅगाई ने जनता में अव्यवस्था और आक्रोश उत्पन्न किया।

1975 में भारत ने अपनी आज़ादी के बाद सबसे बड़े राजनीतिक संकट का अनुभव उस समय किया जब 26 जून को आंतरिक आपातकाल की घोषणा कर दी गई। 1973 की शुरुआत से ही प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गॉधी की लोकप्रियता घटने लगी। जनता की आकांक्षाएँ अधूरी थीं। ग्रामीण या शहरी गरीबी एवं आर्थिक विषमताओं के मोर्चे पर शायद ही कुछ किया गया था और ग्रामीण क्षेत्रों में जातीय शोषणों में कोई कमी नहीं आयी थी। ''असंतोष उभरने का तात्कालिक कारण आर्थिक परिस्थितियों में स्पष्ट गिरावट था। मन्दी, बढ़ती बेरोजगारी, आकाश छूती महॅगाई और खाद्य पदार्थों की कमी आदि सब कुछ ने मिल जुलकर एक गंभीर संकट उपस्थिति कर दिया था। 1971 के दौरान बांग्लादेश से आए एक करोड़ से अधिक शरणार्थियों तथा साथ ही बांग्लादेश युद्ध ने बड़ी आर्थिक विषमता खड़ी कर दी। 1972 व 1973 में लगातार मानसून भी असफल रहा जिससे देश के अधिकतर हिस्सें में भयंकर सूखा पड़ा और खाद्यान्नों की भीषण कमी हुई और इसके फलस्वरूप उनकी कीमतों में भारी वृद्धि हुई।''[7] कानून और व्यवस्था की हालत निरन्तर खराब होती गई। हड़तालें, छात्र प्रदर्शन और जुलूस अक्सर हिंसक हो उठे। कुल मिलाकर कांग्रेस के खिलाफ़ देश में ज़बरदस्त लहर उठी। 1975 के आपातकाल की घोषणा से इसकी परम परिणति तक पहुॅची। जयप्रकाश नारायण ने उस समय पूरे भारत में 'संपूर्ण क्रांति' का नारा छेड़ा। यह वह पूरी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष था जिसने हर व्यक्ति को भ्रष्ट बनने के लिए मजबूर कर दिया था।

आपातकाल के बाद भी भारत की इस आर्थिक अस्थिरता का कारण सरकार की सामाजिक नीति में फैली रूढ़ियों के कारण था। देश की सरकार जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद जैसी समस्याओं को सुलझाने में विफल हुई जो बाद में चलकर आर्थिक क्षेत्र में उसका बुरा प्रभाव दिखने लगा। सरकार मज़दूर–किसान–ज़मीनदार व गृह उद्योग के बीच के समभाव को स्थिर नहीं रख पाई। किसान और मज़दूर आर्थिक शोषण के शिकार होते रहे। पंचायतीराज व विकेन्द्रीकरण जैसी व्यवस्था भी इसके कारण प्रभावी नहीं हो पाई। 1947 में भारत जब स्वतंत्र हो रहा था तब वह एक देश नहीं था बल्कि कई प्रांतों का समूह था। इस सच्चाई की पहचान ने उस समय के राष्ट्र निर्माताओं को धर्मनिरपेक्ष संविधान के निर्माण में बाध्य किया था क्योंकि भारत भूमि की प्रकृति स्वतः धर्मनिरपेक्ष का था। परन्तु इस सेक्यूलर प्रकृति की सही पहचान करने में बाद के नेतागण व सरकार विफल हुई। इसका परिणाम अव्यवस्था था। देश का नैतिक स्वरूप बिगड़ गया। भ्रष्ट नेता अपने स्वार्थ लाभ के कारण जनता का शोषण करते रहे। समाज के हर तबके में, प्रशासन व्यवस्था में, सभी जगह भ्रष्टाचार फैल गया। काला धन और भ्रष्टाचार ने देश की आर्थिक व्यवस्था के जड़ों को खा गया। उदारीकरण के इस युग में भारत की विद्यमान भ्रष्ट व्यवस्था के कारण उच्च एवं निम्न वर्ग के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। किसानों की गिनती दिन–ब–दिन घटती जा रही है। भारत के स्ववंत्रता प्राप्ति के 69 साल के बाद भी यहॉ का किसान सूदखोरों के फंदे में फॅसा है।

2.3. राजनीतिक परिस्थिति और अस्मिता

भारत की राजनीतिक इतिहास का सबसे भयानक समय 1975 में है जब प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गॉधी ने आपातकाल की घोषणा की। इस दौरान बड़े नेतागण जैसे जयप्रकाश नारायण, मोरारजी देसाई, अटल बिहारी वाजपेई, लालकृष्ण आडवानी को कारावास भेजा गया। व्यवस्था के खिलाफ आवाज़ उठाने वालों को रौंदा गया। यह 1977 तक मौजूद था। उसके बाद हुए आम चुनाव में कॉग्रेस की भारी हार हुई और भारत के राजनीतिक इतिहास में पहली बार गैर कॉग्रेस सरकार का गठन मोरारजी देसाई के नेतृत्व में हुआ परन्तु यह सरकार ज़्यादा दिन चली नहीं और चुनाव के पश्चात् 1979 में चरण सिंह भारत के प्रधानमंत्री बने। यह दोनों जनता पार्टी के सदस्य थे। यह सरकार भी ज़्यादा चली नहीं और 1980 के आम चुनाव में बहुमत के साथ फिर से इंदिरा गॉधी प्रधानमंत्री के पद में चुनी गईं। 1980 में पंजाब में खलिस्तान की मॉग उठी। इस विद्रोह को सरकार ने सैनिक बल के सहारे कुचल दिया। इसकी प्रतिक्रिया बहुत भयानक थी। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गॉधी की हत्या उनके अपने सिक्ख अंगरक्षकों द्वारा की गई। इसके पश्चात् सिक्ख हत्याकाण्ड हुआ। इंदिरा गॉधी की हत्या के प्रतिकार के रूप में दिल्ली में ही हज़ारों सिक्खों की हत्या की गई। पंजाब में सशस्त्र बल विशेष अधिकार अधिनियम तथा आतंकवाद बाधित क्षेत्र के रूप में घोषित किया गया। श्रीमति इंदिरा गांधी की हत्या के बाद उनके बेटे श्री राजीव गॉधी 1984 में प्रधानमंत्री बने।

80 के दशक में भारत सरकार ने विदेशी कंपनियों का मंडी में शेयर का प्रतिशत बढ़ा दिया। भारत में स्थापित होने वाले विदेशी कंपनियों पर सरकार का शेयर कम किया गया। भोपाल गैस दुर्घटना का स्रोत यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड, एक अमेरिकन कंपनी थी। उसमें सरकार का हिस्सा 49.1 प्रतिशत था। सरकार निजी संस्थाओं को अधिक वरीयता दे रही थी। देश के कई हिस्सों में हिन्दू कट्टरवादी दंगे कर रहे थे। यह वही समय था जब विश्व हिन्दू परिषद् और अन्य हिन्दू कट्टरवादी अयोध्या की रामजन्म भूमि का मसला खड़ा किया था। 1977 में प्रधानमंत्री इंदिरा गॉधी ने इन घटनाओं को मद्देनज़र रखते हुए सामान्य जन और मुसलमानों को विश्वास में लेने के लिए संविधान की प्रस्तावना में समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता शब्द जोड़ दिया। ''इंदिरा गॉधी के समाजवाद और अल्पमत राजनीति से प्रतिबद्धता 1977 में देखी जा सकती है। जब भारत, एक घोषित प्रभुत्व, लोकतांत्रिक गणतंत्र है, उसके संविधान की प्रस्तावना में 'धर्म निरपेक्ष' और 'समाजवादी' दो शब्द जोड़े गए। इसके अतिरिक्त सरकारी नीतियॉ और उद्यम अधिक से अधिक धर्म और जाति पर आधारित होने लगी और धार्मिक अल्पमतों व सामाजिक तौर पर पिछड़े वर्गों को विशेष सुविधाएँ देनी लगी।''[8]

कॉग्रेस और अन्य राजनीतिक दलों ने वोट बैंक की राजनीति को अपनाया। देश के कई हिस्सों में क्षेत्रवाद, भाषावाद आधारित समस्याएँ उभर रही थीं। इन सभी का प्रभाव 1984 के आम चुनाव में प्रतिफलित हुआ जो आगे चलकर 1991 के आम चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को मुख्य विपक्ष पार्टी के रूपमें प्रतिष्ठित किया।

श्रीलंका में वहॉ की सरकार और एलटीटीई के बीच चल रही युद्ध में एलटीटीई के विरुद्ध उठाए गए कदम के प्रतिकार में एलटीटीई ने 1991 में कॉग्रेस पार्टी के प्रचार–प्रसार के लिए तमिलनाडू आए श्री राजीव गॉधी की आत्मघाती बांबिंग द्वारा हत्या की गई। इसके तुरन्त बाद हुई आमचुनाव में कॉग्रेस की बड़ी जीत हुई और प्रधान मंत्री के रूप में पी वी नरसिंहराव हुए। इसी सरकार 1992 में भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण लायी। 1999 के आम चुनाव में श्री ए बी वाजपेई के नुतृत्व में आए एनडीए ने संसद में बहुमत के साथ जीत हासिल की। यह पहली गैर कॉग्रेसी सरकार बनी जिसने अपने पॉच साल के कार्यकाल को पूरा किया। हालॉकि अगले आम चुनाव के बाद डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में कॉग्रेस की सरकार 10 साल तक शासन में रहीपरन्तु भ्रष्टाचार और काले धन के मामलों में फंसी रही। इसके परिणामस्वरूप 2014 के आम चुनाव में श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में एनडीए की सरकार फिर शासन में आई। ''उसके दूसरे कार्यकाल के दौरान भ्रष्टाचार और काले धन के मामलों ने कांग्रेस की छवि को खराब कर दिया था। उसे नीतिगत पक्षाघात के लिए भी कड़ी आलोचना झेलनी पड़ी जिसने भारत की अर्थ व्यवस्था को पूरे दशक के दौरान मंद कर दिया। दूसरी तरफ मोदी के सबसे बड़े समर्थक भारत के शहरी और मध्यवर्ग है, जो कांग्रेस के घोटालों में डूबे शासन के विकल्प ढूॅढ रहे थे।''[9]

इस तरह देखें तो 1980 के बाद भारत की राजनीतिक परिस्थिति अत्यंत गंभीर स्थिति में चल रही है। इस समय के दौरान ही महत्वपूर्ण राजनीतिक बदलाव हुए। समाजवादी शक्तियों का पतन और कट्टर हिन्दुत्ववाद जैसे सांप्रदायिक शक्तियों का उत्थान हुआ है। जाति

आधारित राजनीति आज सभी जगह व्याप्त है। भारतीय राजनीति में आए बदलाव आज पूरे भारत के सामाजिक व सांस्कृतिक फलक पर गहरा असर छोड़ा है। भारत के आर्थिक विकास पर ज़ोर देने हेतु सरकार ने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को बढ़ाया है। कहा जाता है कि 'मेक इन इंडिया' पहल से अर्थव्यवस्था के 48 प्रतिशत तक बढ़ा है।

2.4. **सांस्कृतिक परिस्थिति और अस्मिता**

भारत की संस्कृति की पहचान यहॉ के विभिन्न जातियों व धर्मों के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक भिन्नता और उनके परंपरागत विश्वासों के आधार पर करना चाहिए। इन्हें केवल उच्च, मध्य एवं निम्न वर्गों में विभाजित किए बिना, समाज में उनके स्थान को निर्धारित करना आवश्यक है। भारत की यह जातियॉ समाज के आर्थिक ढांचे के हिस्से भी हैं जिनके बिना समाज की गतिशीलता थम जाएगी। यह जातिगत भिन्नता उनके व्यवसाय पर निर्भर है जो बाद में जाकर प्रत्येक जाति या समूह के लोगों पर रूढ़ हो गई। इसका मतलब यह है कि जाति पहले व्यक्ति के कर्म पर निर्भर था। भारतीय समाज के इन विभिन्न सामूहित विभागों की सही पहचान और उनकी समस्या से रू–ब–रू हुए बिना भारत की सांस्कृतिक उत्थान संभव नहीं है। भारत भूमि की विशेषता यह है कि यह विभाजन केवल हिन्दू धर्म में नहीं बल्कि यहॉ आए इस्लाम, इसाई, पारसी आदि धर्मों में भी पाए जाते हैं। ''सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि में, मज़दूरी के सामाजिक विभागों के आधारभूत इकाई के रूप में जाति का समाज में एक ठोस अस्तित्व है। उनके नाम अक्सर व्यावसायिक होते हैं।''[10]

भारत की संस्कृति की पहचान के संदर्भ में धार्मिक अल्पमतों का स्थान भी महत्वपूर्ण है। भारत में हिन्दू धर्म बहुमत का धर्म है और इस्लाम, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, जैन तथा पारसी को महत्वपूर्ण धार्मिक अल्पमत के रूप में घोषित है। भारत में धार्मिक अल्पमत के संदर्भ में यह जान लेना आवश्यक है कि सदियों पहले जो भी धर्म भारत भूमि में आए हैं उनका इतिहास सांस्कृतिक आदान प्रदान का रहा है। आज भारत के सभी धर्म आचार–विचार के संदर्भ में कहीं न कहीं समभाव रखते हैं। यह कई सदियों के आपसी व्यवहार का परिणाम है। कला, साहित्य, संगीत, नृत्य, भाषा आदि जीवन के कई क्षेत्रों में सभी धर्मों का आदान–प्रदान हुआ है। इन सभी में सभी धर्मों के अंश हमें मिल जाएँगे।

स्वतंत्रोत्तर भारत के संदर्भ में धर्म को अपने सही अर्थ के विकृतिकरण का सामना करना पड़ा है। धार्मिक कट्टरपंथियों के अधिकार की प्राप्ति हेतु राजनीति करने की प्रवृत्ति ने भारत में कई दंगे करवाए हैं। इस तरह की कोई भी घटना निदनीय है तथा भारत के सांस्कृतिक अस्मिता को ठेस पहूंचाने वाली है। 1980के दौरान अयोध्या राम जन्म भूमि का मसला विश्व हिन्दू परिषद्, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, बजरंग दल आदि के द्वारा खड़ा करना तथा 6 दिसम्बर 1992 में बाबरी मस्जिद का खण्डन स्पष्टतः भारत में धार्मिक ध्रुवीकरण को पैदा करने का था। इसमें यह सफल भी हुए। इस घटना के बाद देश के कई हिस्सों में हिन्दू–मुस्लिम दंगे हुए और इनमें कई हज़ार लोग मारे गए। यह भारत की धर्मनिरपेक्षता की भावना पर सीधा चोट था। इस तरह के धार्मिक व जातिगत मसले बहुत बार उठे हैं। इस संदर्भ में यह देखा जाना चाहिए कि प्रत्येक धर्म के अपने विश्वास, रीति–रिवाज़ तथा व्यक्ति संबंधी

सामाजिक नियम होते हैं। जिसकी पुष्टि संविधान का अधिनियम 25 करता है। इसके साथ संविधान का अधिनियम 44 के तहत् एक यूनिफॉर्म सिविल कोड का प्रस्ताव है, जो एक राष्ट्र के रूप में भारत की धर्म निरपेक्षता की प्रकृति, धार्मिक अल्पमतों के अधिकार और शोषित वर्ग के हित में न्याय सुनिश्चित करने हेतु संविधान को कसौटी के रूप में लेने जैसे विविध आयाम हमारे सामने खुलते हैं।

1980 के बाद भारत में विद्यमान सांप्रदायिक शक्तियों ने जड़ पकड़ ली। इनमें राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद, इंडियन मुजाहिदीन जैसी संस्थाएँ प्रमुख हैं। इन्होंने आम जनता को धर्म के नाम पर भड़काया है। उनमें नफरत पैदा की है। सांप्रदायिकता भारत के धर्मनिरपेक्षता पर बहुत बड़ा प्रश्न चिह्न लगाती है। स्वतंत्र भारत के विकास प्रक्रिया को धर्मनिरपेक्षता से जोड़ने परवर्ग संघर्ष उभरकर आता है जो भारत के भिन्न जाति व धर्म के होते हुए भी उच्च तथा निम्न वर्ग के विभाजन व निम्न वर्ग के शोषण की समस्या को वरीयता देता है। परन्तु स्वार्थी नेता वर्ग व सांप्रदायिक शक्तियॉ इसे अधिकार प्राप्ति (वोट बैंक) एवं शोषण हेतु जाति व भाषा भेद पर किए जाने वाली राजनीति के स्तर से ऊपर उठने नहीं देते हैं। ''अतः भारत में हमेशा दो प्रकार के धर्म निरपेक्षतावादी मौजूद थे : एक वह जिनके लिए धर्मनिरपेक्षता राष्ट्रीय राजनीति में प्रयुक्त होने लायक उपस्कर मात्र था और दूसरे वह जिन्होंने यह सोचा कि धर्म को राजनीति से पृथक कर राष्ट्रीयता और लोकतंत्र को धर्मनिरपेक्षता के आधार पर खड़ा करें। दूसरी परंपरा को राजनीतिक तौर पर हाशिएकृत किया गया जबकि पहली परंपरा जिन्हें भारतीयता के नाम पर हिन्दू राजनीतिक शैली को आत्मसात् करने की क्षमता थी, उन्हें

वरीयता मिली।''[11] इस संदर्भ में भारतीय समाज और राजनीति को धर्मनिरपेक्ष बनाने में आधुनिक आर्थिक विकास भी विफल रहा।

संप्रदायिक राजनीतिज्ञों ने आर्थिक असमानता, असमान विकास और अविकास को समाज में अपनी पैठ जमाने के लिए बखूबी प्रयुक्त किया है। इन्होंने भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में आधुनिक विचारधाराओं के प्रभाव को पाश्चात्य अंधानुकरण के तहत नकारात्मक ढंग से प्रयुक्त कर नारी सशक्तीकरण और दलितों की अस्मिता जैसे आन्दोलनों को क्षीण तथा नष्ट करने की कोशिश की है। ''1982 और 1985 के बीच देश के कई हिस्सों में न्याय व्यवस्था को कायम रखने के लिए 353 से अधिक बार सैनिक सहायता लेनी पड़ी है। 1980 और 1989 के बीच भारत करीब 4500 सांप्रदायिक दंगों से मुखातिब हुआ है, जिनमें 7000 के करीब लोग मारे गए थे। सांप्रदायिक दंगों से प्रभावित जिलों की संख्या में 1961 में 61 से 1986–87 में 250 तक वृद्धि हुई है। केवल 1988 में, 611 सांप्रदायिक दंगे हुए, जिनमें 55 प्रतिशत देहाती क्षेत्रों में हुए हैं। देश में बढ़ती इन घटनाओं को सरकारी तंत्र ने सांप्रदायिक अति संवेदनशील' क्षेत्र के रूप में घोषित किया, जो 1971 में 86 से 1988 में 213 तक बढ़ा है। केवल 1988 में, 'अति संवेदनशील' जिलों की संख्या 82 सेबढ़कर 100 हुआ है।''[12]

अक्तूबर 1990 में एल के आडवानी ने अयोध्या राम जन्म भूमि के विषय को जिस प्रकार महत्व देकर आम चुनाव का विषय बनाया, तथा हिन्दू ध्रुवीकरण के तहत बाबरी मस्जिद का खण्डन कर राम भक्ति और हिन्दू एकता का प्रदर्शन करने का आह्वान और मंडल कमीशन रिपोर्ड

द्वारा प्रस्तुत सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को नज़रअंदाज करना, इस बात को सुनिश्चित करता है कि सांप्रदायिक शक्तियॉ जाति व धर्म की राजनीति से ऊपर उठना ही नहीं चाहते हैं। 1975 का आपातकाल इन सांप्रदायिक शक्तियों को भारतीय राजनीतिक परिवेश में अपनी पैठ जमाने का अवसर प्रदान किया है। साथ ही भारत के राजनीतिक शक्ति केंद्रों में उच्च वर्ग की पकड़ अधिक है और भारतीय उच्च वर्ग अधिकतर परंपरावादी है जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सांस्कृतिक आधिपत्य से पभावित है, वह ब्रिटीश साम्राज्यवाद जिसने भारत में मुख्यधारा राष्ट्रीय आन्दोलन को विफल बनाने के लिए यहॉ की धार्मिक और जातिगत रीति–रिवाज़ों को एक नई व ठोस कानूनी दर्जा दिया।

1980 के बाद भारत की समाज और संस्कृति में बहुत सारे बदलाव आए। सांप्रदायिकता व भ्रष्टाचार से ग्रस्त भारतीय समूह और एक महत्वपूर्ण परिवर्तन से गुज़रा जब 90 के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था ने उदारीकरण को अपनाया।

नब्बे का दशक भूमंडलीकरण का रहा है। इसका प्रभाव भारत की संस्कृति पर कई तरह से हुआ है। परंपरागत विचारधाराऍ क्षीण होने लगीं। मंडी का उदारीकरण होने से कई विदेशी कंपनियॉ व संस्थाएं भारत में आईं। दुनिया में हर क्षण हो रहे वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास से हम रू–ब–रू हो रहे हैं। इसके साथ ही ब्रांड संस्कृति का भी जन्म हुआ। जाति, भाषा, वर्ग, राष्ट्रीयता आदि के सामाजिक संबंध तीव्र होते जा रहे हैं। इसने विकास के आर्थिक ढॉचे का गठन किया है जो बिल्कुल एक आयामी है। हर पहलू आर्थिक दृष्टि से ऑका जा रहा है।

यह विकासित पश्चिमी देशों का पूर्वी विकासशील एवं अविकसित देशों के ऊपर आर्थिक आधिपत्य है जिसका प्रभाव भारतीय समाज और संस्कृति पर पड़ रहा है। ''वास्तव में भूमंडलीय मंच अपने–आपमें एक पश्चिमी मंच है। यह पश्चिमी सत्ता और नियंत्रण का ही व्यक्तिकरण है।''[13] आर्थिक तंगी के कारण जिस उदारवादी अर्थव्यवस्था का आश्रय भारत ने लिया था,उसने भारत के मूल सांस्कृतिक अस्मिता एवं परिवेश में परिवर्तन लाया। सामूहिकता पर वैयक्तिकता हावी होने लगा। समाजवादी व्यवस्था से उपभोगवादी व्यवस्था में परिवर्तित हुआ। भारत की सामूहिक संस्कृति पर यह एक बड़ा प्रहार है। उदारीकरण के फलस्वरूप पी वी नरसिंहराव सरकार ने तथा 2004 में फिर से शासन में आए कॉग्रेस की सरकार ने कई उद्योगों का निजीकरण किया तथा सरकारी व गैरसरकारी उद्योगों में विदेशी निवेश का प्रतिशत बढ़ाया। आयात शुल्क को कम किया गया तथा देश द्वारा दिए जा रहे प्राधिकृत अनुदान (सब्सिडी) में कटौती की गई। इन्होंने देश के विकास को गति देने के लिए विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफ डी आई) को भारत की अर्थव्यवस्था में शामिल किया। पहले बीमा सेक्टर में 26 प्रतिशत तक एफ डी आई को लागू किया गया जो 2014 में नरेन्द्र मोदी की सरकार ने उसे 49 प्रतिशत तक किया। इन्होंने सितम्बर 2014 में 'मेक इन इंडिया' उपक्रम के तहत एफ डी आई की नीतियों को और अधिक उदार बनाया। इसे अन्य कई सेक्टरों में भी लागू किया गया, यथा–अवसंरचना (इंफ्रास्ट्रक्चर), ऑटोमोटिव, औषधीय (फॉर्मास्यूटिकल्स), सेवा, रेलवे, रसायनिक, वस्त्र उद्योग, विमान उद्योग। आज भारत दुनिया के सबसे बड़े मंडियों में एक है और यह दुनिया के सबसे बड़े उपभोक्ताओं में एक है।

इस उदारवादी मंडी में इंटरनेट एक ऐसी भूमिका निभा रहा है जिसने इस पूरी व्यवस्था को लचीला बना दिया। ''आधुनिक सूचना तकनीक से प्रभावित राष्ट्रीय सरकरें भूमंडलीय बाज़ार व्यवस्था को अपनाने के लिए इस कारण भी बाध्य हैं कि उत्पादनकर्ता कहीं भी आ जा सकता है। इंटरनेट तो वह एजेंट है जो बाज़ार–आधारित समाज को विकेंद्रित, जनतांत्रिक और पारदर्शी बनाकर ही छोड़ता है।''[14]भूमंडलीकरण के दुष्प्रभाव भी उसके साथ आने लगे हैं। भारत एक विकासशील देश है और वह विकसित देशों की तरह अपने निवासियों की व्यक्तिगत आर्थिक सुरक्षा को सुनिश्चित नहीं कर सकती। इसलिए भारत जैसे देश को विदेशी पूंजी पर अपनी निर्भरता बढ़ाना घातक सिद्ध होगा। भूमंडलीकरण स्थानीय अर्थव्यवस्था को मिटा रही है। इससे गृह उद्योगों पर बुरा असर पड़ रहा है। इसने देहाती अर्थ–व्यवस्था की आत्मनिर्भरता को करीब–करीब मिटा दिया है। इस संदर्भ में भारत की सरकार पर यहॉ की जनता का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है।

विकासशील देशों की साम्राज्यवादी देशों और उसकी वैश्विक वित्तीय संस्थाओं पर निर्भरता जितनी बढ़ती जा रही है, उसी प्रक्रिया में दुनिया में नवउपनिवेशवाद का खतरा भी बढ़ने लगा है। ''नवउपनिवेशवाद साम्राज्यवादी शोषण के आर्थिक, राजनीतिक, विधिक, वैचारिक, सैनिक इत्यादि संबंधों की वह प्रणाली है, जो विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में विकासमान देशों की असमानतापूर्ण स्थिति पर आधारित है। नवउपनिवेशवाद का भौतिक आधार अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवादी श्रम विभाजन और विकासमान देशों की साम्राज्यवादी देशों पर आर्थिक निर्भरता है।''[15] विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोश, विश्व व्यापार संगठन,

विश्व वित्तीय संस्थाओं की आर्थिक सहायता के पीछे उनके अपने निबंधन एवं शर्तें होती हैं जिससे वह अपनी नीतियों को विकासशील देशों पर थोपने तथा देश की राजनीति, संस्कृति आदि पर हस्तक्षेप भी करती है। अतः भारत को इस तरह के अदृश्य संकटों से बचना चाहिए। आज देश की आर्थिक, शिक्षा संबंधी नीतियों के लिए इन विश्व वित्तीय निजी संस्थाओं की सहायता ली जाती है। यह प्रवृत्ति अत्यन्त घातक है।

2.5 **निष्कर्ष**

भारत एक सांस्कृतिक बहुलतावादी, प्रजातांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष देश है, जिसकी जड़ें उसकी संस्कृति की गहराईयों में बसी हैं। इसकी सही पहचान ही भारत की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक विकास में हमें सहायक सिद्ध होगी। इसके लिए हमें अपने देश के इतिहास व संस्कृति का सूक्ष्म आकलन आवश्यक है ताकि उग्रवादी, आतंकवादी या नवउपनिवेशवादी शक्तियॉ इसे अपनी गिरफ्त में न लें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सच्चिदानन्द सिन्हा –संस्कृति और समाजवाद, पृ. सं– 15
2. अरविन्द एन दास–इंडिया इंवेंटड् – ए नेशन इन दी मेकिंग, पृ. सं– 61
3. के एल शर्मा–भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन, आमुख
4. सैफुद्दीन अहमद –भारत में सामुदायिक दंगों के दौरान मीडिया की भूमिका, वॉल्यूम 37
5. मजीर हुसैन –बाबरी मस्जिद का खण्डन, दी हिन्दू, 6 दिसम्बर 2012
6. अरविन्द एन दास–इंडिया इंवेंटड् – ए नेशन इन दी मेकिंग, पृ. सं– 14
7. बिपन चन्द्र– आज़ादी के बाद का भारत, पृ. सं– 329
8. कथन शुक्ल – भारतीय राजनीति : तत्काल शिथिलता की पहचान, फेयर ऑब्सॉबर, 16 फरवरी 2012
9. भारत – राजनैतिक विकास, www.globalsecurity.org, 21 july 2016
10. अरविन्द एन दास–इंडिया इंवेंटड् – ए नेशन इन दी मेकिंग, पृ. सं– 85
11. प्रकाश चन्द्र उपाध्याय–दी पॉलिटिक्स ऑफ इंडियन सेक्यूलरिज़म, पृ. सं– 6

12. वही, पृ. सं– 7

13. प्रभा खेतान –भूमंडलीकरण : ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, पृ. सं– 11

14. वही, पृ. सं–13

15. राकेश कुमार –उत्तर उपनिवेशवाद : चुनौतियॉ और विकल्प, पृ. सं– 12

Pradeep Raj P. “ Search for the cultural identity of India in contemporary Hindi poetry (With special reference to 1980-2000)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2017

तीसरा अध्याय

हिन्दी कविता सन् 1980 तक : प्रमुख प्रवृत्तियाँ

हिन्दी कविता का इतिहास अपनी मिट्टी और आबोहवा से जुड़ी हुई है। अपनी विकास यात्रा के हर पड़ाव में उसने आम आदमी और उसकी वैविध्यपूर्ण संस्कृति से अपना नाता जोड़ा है और उसके संघर्ष को अभिव्यक्ति दी है। इस वजह से हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी कविता का मूल स्वर प्रगतिशील रहा है और आज भी वह अपनी इसी रुख को कायम रखने की पूरी कोशिश कर रही है। भारत बड़े लम्बे समय से औपनिवेशिक गिरफ्त में रहा है आज भी उसकी सांस्कृतिक विरासत खतरे में है। अतः हिन्दी कविता के इतिहास आ अध्ययन करते समय यह विदित होता है कि उसका साहित्य मूलतः इंसान और उसके संस्कृति पर आधारित रही है एवं उसका तेवर प्रतिरोधी रहा है।

हिन्दी कविता के इतिहास पर नज़र डालने से यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि उसमें पुरानी व्यवस्था का विरोध और जनतंत्र की तरफ बढ़ने की ख्वाहिश है और जिसमें देश–विदेश की घटनाओं तथा जन–आंदोलनों की गहरी छाप है। बदलती सामाजिक परिस्थिति उससे जुड़ी संस्कृति को भी बदलता है। उसी प्रकार समय और समाज के बदलाव के साथ कविता की संवेदना और उसकी अभिव्यक्ति के तौर–तरीके भी बदलते हैं। युगीन परिस्थिति एवं यथार्थ, उस युग की कविता के प्रवृत्तियों पर अपना असर छोड़ता है। अतएव कविता की कोई शाश्वत प्रतिमान नहीं होती है। वह समय के परिवर्तन के साथ अपने में भी परिवर्तन एवं परिवर्द्धन लाता है। यही कारण है कि हिन्दी कविता ने हर युग में विकास के एक नए प्रतिमान के निर्माण में पहलकदमी की है। यदि हम हिन्दी कविता के इतिहास की युगीन प्रवृत्तियों पर एक नज़र डालें तो उसे मुख्यतः पॉच भागों में विभक्त कर सकते हैंः–

3.1.आदिकालीन हिन्दी कविता

3.2.भक्तिकालीन हिन्दी कविता

3.3.रीतिकालीन हिन्दी कविता

3.4.आधुनिक हिन्दी कविता

इस विभाजन के आधार पर सन् 1980 तक के हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों पर बारीकी से नज़र डाला जा सकता है।

3.1. **आदिकालीन हिन्दी कविता :** आदिकाल की रचनाओं को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में रखा जा सकता है – किसी संप्रदाय या मत से जुड़ी रचनाएँ और राज दरबार के आश्रित चारण कवियों की रचनाएँ। आदिकाल में मुख्यतः अपभ्रंश, पिंगल, डिंगल, राजस्थानी, मगधी एवं खड़ी के काव्य मिलते हैं। इस काल की रचनाओं को मुख्यतः दो भागों में बॉटा जा सकता है – आध्यात्मिक और लौकिक। आध्यात्मिक रचनाओं में सिद्ध, नाथ व जैन साहित्य आता है और लौकिक में रासो साहित्य, प्रेम कथा साहित्य, पहेली, मुकरियॉ आदि। इन रचनाओं के आधार पर आदिकालीन साहित्य में निम्नलिखित प्रवृत्तियों को रेखांकित किया जा सकता है। यथा – 1. धार्मिक एवं सिद्धांत परक प्रवृत्ति 2. श्रृंगार संबंधी प्रवृत्ति 3. मनोरंजन साहित्य संबंधी प्रवृत्ति 4. प्रेम कथा साहित्य संबंधी प्रवृत्ति एवं 5. वीरगाथा साहित्य संबंधी प्रवृत्ति।

आदिकाल की रचनाओं की शैली, उसकी भाषागत विशेषताओं और उसके हिन्दी खड़ी बोली से निकटता को देखकर उसका सीमांकन संवत् 1050 से संवत् 1375 रखा गया है। काव्य की दृष्टि से आदिकालीन

साहित्य में एक साथ कई परंपराओं का उदय दिखाई पड़ता है। ''नखशिख वर्णन, विरह के विभिन्न रूप, विरहिणी नायिका द्वारा प्रियतम के पास संदेश – प्रेषण, स्वकीय और परकीय के प्रेम की सीमाएँ – ये सब आदिकालीन साहित्य के कथ्य में अन्तर्निहित हैं।''[1] आदिकालीन कवि धार्मिकता एवं ऐहिकता, वीर और श्रृंगार, ईश्वरत्व और मनुष्यत्व के द्वंद्वों का समाहार करने में संलग्न दिखाई देता है।

हर काल का साहित्य उसके सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से जुड़ा हुआ है। इसलिए किसी भी काल के साहित्येतिहास को समझने के लिए उस काल के परिवेश को ठीक प्रकार से समझना अत्यन्त आवश्यक होता है।

3.1.1. **आदिकालीन रचनाएँ एवं उनकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ**

आदिकालीन रचनाओं में मुख्यतः रासो साहित्य, जैन, नाथ एवं सिद्धों की रचनाएं तथा श्रृंगार, प्रेम व मनोरंजन परक रचनाएँ आती हैं।

3.1.1.1**रासो साहित्यः–** वीर रस की प्रमुखता के कारण रासो काव्यों को काफी महत्व मिला। वीर महाकाव्यों में वीरोल्लासपूर्ण वर्णन के साथ जातियता के भाव भी भरे रहते हैं जो जाति की जागृति या उत्थान के सूचक होते हैं। वीर महाकाव्यों में जातीय भावनाओं से प्रेरित उत्साह–उमंग, तथा प्रयास–साफल्य आदि का चित्रण होता है और नायक इन कर्म व्यापारों से सुबद्ध रहता है। देश–जाति के विश्वास तथा रीति रिवाज़ अर्थात् परंपरा एवं सांस्कृतिक रूढ़ियों का मेल भी नायक के चरित्र में रहता है। इसका कारण बताते हुए विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कहते हैं – ''भट्ट–चारण राजाश्रित थे और अपने आश्रयदाता के

शौर्य–प्रताप की अनूठी उक्तियॉ काव्यबद्ध करते थे। भारत के इतिहास का यह वह समय था जब उत्तर पश्चिम से अनवरत आक्रमण हो रहे थे। पश्चिम प्रदेश के रजवाड़े आपस में भी लड़ते–झगड़ते रहते थे। कवि ओजस्विनी वाणी से उमंग–उत्साह उद्दीपित करते रहते थे।''[2]

रासो शब्द का अर्थ रास याने काव्य से आया है। राजाश्रित चारण कवि अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा अथवा पराक्रम की कविताऍ करते हैं। रासो काव्य दो प्रकार के मिलते हैं – प्रबंध काव्य और वीरगीत। प्रबंधों का रूप साहित्यिक है, पर वीरगीत लौकिक रूप रंग के हैं। इस काल के प्रमुख रासो काव्य हैं – चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो', दलपति विजय कृत 'खुमान रासो', नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रासो', भट्टकेदार कृत 'जयचंद प्रकाश', मधुकर कवि कृत 'जयमयंक जस चंद्रिका', जगनिक कृत 'परमाल रासो' (आल्हाखंड)। यह रचनाऍ मुख्यतः दो शैलियों में लिखी गई हैं –डिंगल तथा पिंगल।

उस समय के कवियों को राजदरबारों में राजा की वीरता, तथा पराक्रम की अत्युक्तिपूर्ण आलाप करना था क्योंकि वीरों का आत्मसम्मान उनके जीवन से भी अधिक महत्व रखता था। ''वीर गाथा काव्य का जीवन राष्ट्रीय सांस्कृतिक परंपरा की एक कड़ी है। उसमें आस्तिक केसाथ आत्मविश्वास, मोक्ष के साथ जीवनानुराग, परलोक के साथ इहलोक आदि विरोधी प्रतीत होने वाले प्रकल्प सर्वत्र अनुस्यूत हैं। वह जीवन व्यापक एवं समृद्ध था। उसमें सूक्ष्म ब्रह्म विचार से लेकर स्थूल अरिमर्दन तक विस्तार था। उस युग में जीवन आत्मसम्मान का ही नाम था, इसलिए सम्मान हानि की अपेक्षा प्राणों की हानि स्वीकार्य समझी

जाती थी''[3]। आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा (ख) युद्धों का सजीव वर्णन (ग) वीर रस की प्रधानता (घ) रसो ग्रन्थ की निर्मिति (च) डिंगल एवं पिंगल भाषा का प्रयोग(छ) प्रकृति चित्रण (ज) जन जीवन से संपर्क नहीं (झ) काव्य के दो रूप – मुक्तक एवं प्रबंध (ट) छंदों एवं अलंकारों का प्रयोग।

3.1.1.2. **जैन, नाथ एवं सिद्धों का साहित्य**

आदिकाल में अध्यात्मिक साहित्य लिखे गए हैं जिनमें जैन, नाथ एवं सिद्धों का साहित्य प्रमुख है।

3.1.1.2.1. **सिद्ध साहित्य :** आदिकाल में बौद्ध धर्म महायान और हीनयान में विभाजित हो चुका था और महायान मंत्रयान में व मंत्रयान वज्रयान हो चुका था। मंत्रों द्वारा सिद्धि प्राप्त करने वाले सिद्ध कहलाते थे। सिद्ध कवियों की रचना 'मगही' भाषा में प्राप्त होती है, इसका ऐतिहासिक कारण यह है कि बौद्ध धर्मावलंबी पाल शासक बंगाल और बिहार में थे और उन्हीं के समय विक्रमशिला बौद्ध विश्वविद्यालय स्थापित हुआ था। सिद्धों की कुल संख्या 84 हैं। इनमें मुख्य हैं – सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोंम्बिपा, कुकरिपा। इन सिद्धों में प्रायः सभी वर्णों के साधक थे। इनमें शुद्र अधिक थे, उनके बाद ब्राम्हण, फिर क्षत्रिय, कायस्थ चर्मकार,वणिक तथा शेष साधकों में मछुआ, गृहपति, धोबी, लकड़हारा, लोहार, वैश्य, दर्जी आदि।

सिद्धों ने जीवन की स्वाभाविक क्रियाओं को सिद्धि प्राप्त करने में बाधा नहीं कही। ''उन्होंने जीवन को प्राकृतिक रूप के गृहस्थ जीवन में व्यतीत करने पर ज़ोर दिया।''[4] जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों में विश्वास

रखने के कारण ही सिद्धों का सिद्धांत सहज मार्ग कहलाता है। वज्रयान का प्रचार 7वीं शती में होना शुरू हुआ और तब से सिद्धों के साहित्य की रचना भी प्रारम्भ हुई। सरहपा को प्रथम सिद्ध कवि माना जाता है। सिद्ध कवियों ने अपने साहित्य में साधना पक्ष पर ज़ोर दिया है तथा आडम्बरों की निन्दा की है। इन्होंने पाखंड का खण्डन, संप्रदाय अवहेलना एवं मंत्रों की व्यर्थता पर ज़ोर दिया है। वह सदाचार में आस्था रखते थे और जीवन की नैसर्गिक प्रवृत्तियों का अनुचित रूप से दमन या प्रश्रय वे धार्मिक जीवन के लिए हितकर नहीं समझते थे। इन्होंने गुरु को अपनी साधना पथ पर मुक्ति प्राप्त करने का मुख्य घटक माना है। गुरू के बिना मोक्ष की प्राप्ति असंभव है। सिद्ध कवियों में ज़्यादातर कवि शूद्र थे, इसलिए उन्होंने जाति भेद एवं वर्ण भेद पर घोर प्रहार किया है। वैदिक देवताओं के प्रति अनास्था और लोक देवताओं के प्रति आस्था इन सिद्ध कवियों ने प्रकट की है।

इन्होंने ब्राह्मणवाद के पौराणिक रूढ़ियों का खण्डन एवं वेदों के प्रति अवमानना प्रकट की है। इस कारणवश मरणोपरांत मुक्ति या निर्वाण प्राप्ति की अपेक्षा जीवनकाल में सिद्धियों को प्राप्त करने पर इन्होंने ज़ोर दिया है। अतः सिद्धों ने सदाचार एवं मध्यम मार्ग को महत्व दिया। ''जो जनता नरेशों की स्वेच्छाचारिता, पराजय या पतन से त्रस्त होकर निराशावाद के गर्त में गिरी हुई थी, उसके लिए इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया। निराशावाद के भीतर से आशावाद का संदेश देना – संसार की क्षणिकता में उसके वैचित्र्य का इन्द्रधनुषी चित्र खींचना इन सिद्धों की कविता का गुण था।''[5]सिद्ध कवि अपनी बानी को पहेली या उलटबासीके रूप में रखते हैं। उनकी भाषा अर्ध मागधी अपभ्रंश के

निकट की भाषा है। इनकी रचनाओं में शांत रस की प्रधानता है। इनकी अधिकांश रचना चर्यागीतों में हुई है तथापि इसमें दोहा, चौपाई जैसे लोकप्रिय छन्द भी मौजूद है। इनके लिए प्रिय छन्द दोहा है क्योंकि यह अधिकतर सिद्धांत प्रतिपादन के लिए प्रयुक्त हुआ है। जहॉ वर्णन विस्तार है, वहॉ चौपाई छन्द है। इनके चर्यागीतों विशिष्ट राग–रागिनियों में लिखे गए हैं। यह सिद्ध कवि संसार के दुख या नश्वरता को देखते हुए भी वे उसे छोड़ने का आदेश नहीं देते हैं। ''उसका आदर्श था जीवन की भयानक वास्तविकता की अग्नि से निकलकर मनुष्य को 'महासुख' की शीतल सरोवर में अतगाहन कराना।''[6]

3.1.1.2.2. **जैन साहित्य :** जैन धर्म अहिंसा को ही परम धर्म मानता है। आचार को सुदृढ़ अनुशासन में रखकर सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव के प्रति भी दया और करुणा का व्यवहार करना कर्म का आदर्श है। इनमें त्याग की भावना भी मुख्य है। जैन साहित्य के प्रमुख कवि हैं – स्वयंभू देव, आचार्य देवसेन, महाकवि पुष्पदंत, धनपाल, मुनि रामसिंह, अभयदेव सूरि, कनकामर मुनि, जिन वल्लभ सूरि, शालिभद्र सूरि। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं :– पउमचरिउ (स्वयंभू), दर्शन सार (देवसेन), जय कुमार चरिउ (पुष्पदंत), तिलक मंझरी (धनपाल), पाहुड दोहा (मुनि रामसिंह), बाहुबलि रास (शालिभद्र सूरि) आदि हैं।

जैन कवियों ने संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश भाषाओं में अपनी रचना प्रस्तुत की है। इनकी रचनाएॅ मुख्यतः धार्मिक, साहित्यिक व ऐतिहासिक होती हैं। गृहस्थों के लिए सिद्धांत–प्रतिपालन व उपदेशात्मक रचनाएॅ

होती हैं और उपासकों के लिए दर्शन संबंधी रचना। उपदेशात्मक रचनाका एक उदाहरण ध्यातव्य हैः–

''भोगहं करहि पमाणु जिय, इंदिप मकरि सदप्प।

हुंति ण भल्ला पोसिया, युद्धों काला सप्प।।''

''(हे जीव! भोगों का भी प्रमाण रख। इंद्रियों को बहुत अभिमानी मत बना।

काले सॉपों का दुग्ध से पोषण करना अच्छा नहीं होता।)''[7]

जीवन की लौकिक एवं अलौकिक पक्षों का वर्णन इनकी रचनाओं में मिलता है। इनकी प्रमुख रचनाऍ हैं – 'पउम चरिउ' (स्वयंभू), 'दर्शन सार' (देवेसेन), 'णय कुमार चरिउ', 'महापुराण' (पुष्पदन्त), 'तिलक मंझरी' (धनपाल), 'पाहुड़ दोहा' (मुनि रामसिंह), 'सुदंसण चरिउ' (कनकामर मुनि), 'बाहुबलि रास' (शालिभद्र सूरि), 'कुमारपाल प्रतिबोध' (सोमप्रभ सूरि) आदि। इनकी रचनाओं में तीर्थंकरों का चरित्र, उनकी यात्रा एवं यात्रा के दौरान प्रकृति वर्णन भी मिलता है। यद्यपि इनकी रचनाओं में धर्म पक्ष मूल में रहती है मगर किसी कन्या के ज़रिए होती है। इनमें मात्र उपदेशपरक रचनाऍ न रहकर इतिहास वर्णन भी मिलता है। श्री मेरूतुंग की रचना 'प्रबंध चिंतामणि' में प्राचीन ऐतिहासिक व्यक्तियों और राजाओं के चरित्र को कथा रूप में संकलित किया है। ऐसा करके इतिहास का विशेष रूप से रक्षा की गई है। इस तरह के अन्य कृतियॉ हैं – 'कुमारपाल चरित' (हेमचंद्र), 'कुमारपाल प्रतिबोध' (सोमप्रभ सूरि), 'जम्बू स्वामी रासा' (धर्म सूरि), 'रेवंतगिरि रासा' (विजयसेन सूरि) आदि।

इनकी रचनाओं में शृंगार चेष्टाएँ, रूप की आकर्षण शक्ति तथा अनेक प्रकार की हृदयाकर्षक क्रीड़ाएँ वर्णित हैं। इनमें इसके ज़रिए प्रकृति चित्रण, बारहमासा वर्णन आदि भी मिलते हैं। परन्तु अंत में किसी जैन मुनि के उपदेश से तथा उनकी दीक्षा से प्रभावित होकर इनके पात्र कठिन तपस्या करता है और उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होती है। ''जैन साहित्य में प्रेम कथाएँ पूर्ण भौतिक उत्कर्ष में है, किन्तु इन भौतिक उत्कर्षों में नश्वरता की भावना लेकर अलौकिक पक्ष या अध्यात्मिक पक्ष की ओर संकेत किया गया है।''[8]जैन साहित्य में नागर अपभ्रम्श भाषा का अधिक प्रयोग हुआ है। यह भाषा अधिकतम पद्य रूप में ही है। जहॉ इसका गद्य रूप है वहॉ टिप्पणियॉ मिलती हैं। यद्यपि इनकी कुछ रचनाएँ संस्कृत में हैं परन्तु उनमें केवल अलंकार निरूपण या नायिका भेद है। अपभ्रम्श में रचित इनकी अधिकतर रचनाएँ धर्मपरक होती है क्योंकि वे साहित्य की अपेक्षा धर्म प्रचार में अधिक ध्यान देते थे। जैन साहित्य में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गयाहै। उनमें कुछ हैं – चरित्र, रास, चतुष्पदी, चौढालिया, ढाल, कवित्त, छन्द, दोहा आदि। सबसे अधिक दोहा का प्रयोग हुआ है।

जैन साहित्य में अनूदित ग्रन्थों की अधिकता है। इस कारण आलोचक डॉ. रामकुमार वर्मा बताते हैं कि – ''हिन्दी जैन साहित्य गृहस्थों या श्रावकों द्वारा लिखा गया है। गृहस्थ या श्रावकों को भय था किवे स्वतंत्र ग्रन्थ रचना करते समय कहीं धर्म विरुद्ध कोई अनुचित बात न कह दें। अतएव उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के सिद्धांतों का ही अनुसरण किया और उन्हीं के ग्रन्थों को अनुवादित किया।''[9]

3.1.1.2.3.**नाथ साहित्य** :– सिद्धों की भांति नाथों ने जीवन में सदाचार को महत्व दिया है। इन्होंने धर्म के तहत कर्मकांड की रूढ़ियों के खिलाफ आवाज़ उठाई है। नाथ संप्रदाय के प्रमुख नाथ मुनियॉ हैं – आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचन्दनाथ आदि। नाथ मुनियों ने संसार की नश्वरता और वैभव विलास की निस्सारता को बड़े भावमय शब्दों में गाया है। नाथ एकेश्वरवाद में विश्वास रखने वाले हैं। इन्होंने इंन्द्रीय निग्रह पर विशेष बल दिया है। इनकी रचनाओं में इन्होंने गुरू की महिमा का वर्णन किया है क्योंकि मुक्ति की राह गुरू ही दिखाता है। इनके अनुसार मुक्ति के तीन प्रमुख मार्ग हैं– इंद्रिय निग्रह, प्राण साधना और मन साधना। इन तीन मार्गों में व्यक्ति को अग्रसर होने के लिए उसे एक गुरु की आवश्यकता है।

नाथ मुनियों ने अपने साहित्य में पाखंड का खुलकर खण्डन किया है। इनमें मंत्र व्यर्थता और संप्रदाय अवहेलना भी है। ''गोरखनाथ ने नाथ संप्रदाय को जिस आंदोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। उसमें जहॉ एक ओर ईश्वर की निश्चित धारणा उपस्थित की गई वहॉ दूसरी ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परंपरागत रूढ़ियों पर कठोर आघात भी किया गया।''[10]

इसके अलावा नाथ साहित्य में रसायन सिद्धि, नाड़ी साधना, कुंडलिनी जागरण, षट्चक्रभेद, अनाहत नाद जैसे विषयों पर भी रचनाएं मिलती हैं। इन्होंने शिव–शक्ति को आदि तत्व माना है। आचरण की शुद्धता तथा शील की ओर इन्होंने अधिक महत्व दिया है। इनकी रचनाओं में किसी भी विषय को रहस्यात्मक शैली में इन्होंने अभिव्यक्ति

दी है। उलटबांसियों का प्रयोग भी इन्होंने किया है। इनकी रचनाओं में प्रमुख रस शांत रस है। इन्होंने दोहा–साखी आदि छंदों का अधिक प्रयोग किया है।

3.1.1.3. **श्रृंगार एवं मनोरंजन का साहित्य**:– इन कवियों ने वस्तुवाद का यथातथ्य चित्रण करते हुए जीवन की उपयोगिता और उसकी नैतिक दृष्टि की ओर ध्यान दिया है। इस श्रेणी के प्रमुख कवियों में अब्दुर्रहमान, बब्बर, अमीर खुसरो, मुल्ला दाऊद आदि आते हैं, जिन्होंने संयोग और वियोग के बड़े हृदयाकर्षक चित्र खींचे हैं। ''ऐसे हृदयाकर्षक चित्रों में प्रकृति वर्णन और उसके अनुरूप संयोग या वियोग की बड़ी सुन्दर मनोवैज्ञानिक झांकियॉ प्रस्तुत की हैं।''[11] इस श्रेणी की प्रमुख रचनाओं में अब्दुर्रहमान कृत 'संदेश रासक', अमीर खुसरो कृत 'पहेलियॉ व मुकरियॉ', मुल्ला दाऊद कृत 'चंदायन', विद्यापति कृत 'कीर्तिलता', 'कीर्तिपताका' आदि आते हैं। इन कवियों ने लौकिक जीवन के विकारों को बड़ी सादगी के साथ अपनी रचनाओं के माध्यम से दिखाया है। प्रेमकथाओं का चित्रण इन्होंने किया है। इनकी रचनाओं में नारी के रूप का वर्णन मिलता है। सौन्दर्य और वैभव का चित्रण होने के बावजूद, इनमें अध्यात्मिक जीवन का भी वर्णन हुआ है।परन्तु अन्त में निवृत्ति का मार्ग प्रशस्त किया है। नैतिक दृष्टि को बरकरार रखते हुए इन्होंने संयोग एवं वियोग पक्ष का चित्रण किया है। इन्होंने प्रकृति के हलचलों को मानव मन के उतार–चढ़ाव से संबद्ध किया है। इस तादात्म्य का वर्णन करने हेतु इन्होंने मनोरंजनार्थ कौतूहलजनक शब्द चमत्कार का प्रयोग किया है।

इस प्रकार देखें तो आदिकाल की रचनाएँ विषयगत, शैलीगत एवं भाषागत दृष्टि से विविधोन्मुखी है। इनमें प्रयोगों की अनेकरूपता है व भावाभिव्यंजन की साधारण शैली है। सिद्धों की भाषा में मगही का प्रभाव है। जैन कवियों में प्राकृत और अपभ्रम्श का प्रभाव है तो रासो साहित्य ड़िंगल एवं पिंगल भाषा में रचित है। नाथ कवियों में अर्ध मगधी का प्रभाव है। अब्दुर्रहमान की रचना पर पश्चिमी प्रभाव है और अमीर खुसरो की मुकरियॉ तथा पहेलियॉ दिल्ली के आस पास के इलाके की खड़ी बोली से शासित हैं।

3.2 **भक्तिकालीन हिन्दी कविता**

भक्तिकाल की रचनाओं को मुख्य रूप से दो धाराओं में विभक्त कर सकते हैं – निर्गुण काव्यधारा व सगुण काव्यधारा। आगे चलकर निर्गुण काव्यधारा को दो शाखाओं में विभक्त कर सकते हैं – ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा। सगुण काव्य धारा को दो शाखाओं में विभक्त कर सकते हैं – रामभक्ति शाखा व कृष्णभक्ति शाखा। भाषा की दृष्टि से ब्रज, अवधि, खड़ी बोली, उर्दू, फारसी, अरबी आदि का प्रयोग भक्तिकाल की रचनाओं में हुआ है। सामान्यतः भक्तिकाल का सीमांकन सन् 1375 से 1700 तक किया गया है। भक्तिकाल की रचनाओं में एक विशेष बात यह है कि वह हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच समन्वय पर ज़ोर दिया है। इस काल के प्रमुख कवि हैं – कबीर, तुलसीदास, सूरादास, जायसी, मीराबाई, रहीम आदि। इन कवियों ने अपनी भाषा और रचना शैली को लोक परंपरा से जोड़ने की भरपूर कोशिश की है। भक्तिकालीन कवि मानवीय मूल्यों को अधिक महत्व देते थे। उनके लिए

व्रत, तीर्थ, पूजा, धार्मिक आचारों, आदि रूढ़िवादिता एवं भक्ति के नाम पर आडम्बर है। ''भक्तिकालीन कवि सदाचार व अहिंसा जैसे मूल्यों को बहुत बड़ा सत्य मानते हैं और मिथ्याचार के घोर निंदक हैं। उनके लिए भक्ति का मूल्य जाति, धर्म, कुल, धन, सांसारिक ऐश्वर्य में नहीं है बल्कि भक्ति का केवल एक ही मूल्य है, प्रेम।''[12]

3.2.1.**निर्गुण काव्यधारा**

निर्गुण की उपासना इनका प्रमुख ध्येय है। इन्होंने ईश्वर को निराकार माना है। परमात्मा प्रकृति के कण कण में मौजूद है। इसलिए ईश्वर को किसी आकार या रूप में बांधना व्यर्थ है। ''परमात्मा चारों ओर हैं। अर्थात् भगवान कण–कण में हैं, किन्तु उसे हम भूलकर व्यर्थ में इधर–उधर भटकते हैं जबकि वह अपने घट में निवास करता है। ''काहे रे वन खोजन जाई। सर्व निवासी सदा अलोपा तोही संग समाई।''[13]इन्होंने गुरू को मोक्ष प्राप्ति के राह में भक्त को अग्रसर करने वाला माना है। इनके अनुसार साधक गुरू के बिना कभी भी अध्यात्म के सही राह पर चल नहीं सकेगा। इन्होंने गुरु को ईश्वर से भी अधिक महत्व दिया है।

निर्गुण कवियों ने अवतारवाद का विरोध किया है। वे बहुदेववाद के कट्टर विरोधी थे। ''उस समय हिन्दू–मुसलमानों में द्वेष की अग्नि भड़क उठी थी, उसे शांत करने के लिए इन कवियों ने एकेश्वरवाद का संदेश सुनाया है।''अक्षय पुरूष इक पेड़ है, निरंजन बाकी डार।/त्रिदेव शाखा भये, पात भये संसार।।''[14]निर्गुण संत कवियों ने सामाजिक कुप्रथाओं व बेतुके आडम्बरों का विरोध किया है। इन्होंने रूढ़ियों का खण्डन किया

है। स्वांग एवं कुरीतियों की इनके द्वारा कटु आलोचना हुई है। इन्होंने मूर्ति पूजा का खण्डन किया है। इनका दर्शन रहस्यवाद पर आधारित है। इनके रहस्यवाद पर सूफियों का प्रभाव है। इसमें आत्मा को पत्नी के रूप में तथा परमात्मा को पति के रूप में देखा जाता है। प्रणयानुभूति के साथ विरहानुभूति का भी दर्शन इनमें होता है।''ऑखड़ियॉ झॉई पड़ीं, पंथ निहारि निहारि।/जीभड़ियॉ छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि।।''जाति–पांति के भेद–भावों का घोर विरोध इन्होंने किया है। उन्होंने ऊॅच–नीच, छुआ–छूत आदि भेद–भावों को समय–समय पर विरोध करके मिटाने की कोशिश की है। ''उनका मानना है कि भक्ति के क्षेत्र में भगवान जाति के नहीं भाव के भूखे होते हैं, उनके लिए न कोई छोटा है और न कोई बड़ा है। 'जाति पांति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।''[15]

इनमें वैयक्तिक साधना का महत्व है। इनके अनुसार, वैयक्तिक साधना के माध्यम से आत्मशुद्धि तथा आचरण की पवित्रता प्राप्त की जा सकती है। इन्होंने प्रतीकों और उलटबासियों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। लौकिक के साथ अलौकिक के काल्पनिक एवं यथार्थ अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए इन्होंने प्रतीकों का आश्रय लिया है। इनमें सत्संग, भजन तथा नाम स्मरण का महत्व है। ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रेम और नामस्मरण को परमावश्यक माना गया है। विरह की मार्मिक उक्तियॉ इनके काव्य में मिलती हैं। श्रृंगार एवं शांत रस का अधिक चित्रण हुआ है। इनकी रचनाओं में संयोग एवं वियोग का बड़ी बारीकी के साथ वर्णन हुआ है।संत कवियों ने नारी को माया का एक रूप माना है। कबीर का एक दोहा इस प्रकार है –''नारी की झॉई परत, अंधा होत

भुजंग।/कबिरा तिनकी कौन गति, नित नारी के संग।।''निर्गुण संत कवियों की रचनाओं में गेयमुक्तक शैली का प्रयोग हुआ है। इनमें गीतिकाव्य के सभी तत्वों का प्रयोग दिखाई पड़ता है, यथा भावात्मकता, संगीतात्मकता, सूक्ष्मता, वैयक्तिकता, कोमलता आदि। काव्यों में दोहा, चौपाई, साखी आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनकी भाषा को खिचड़ी या सधुक्कड़ी भाषा भी बोली जाती है।

3.2.2. **सगुण काव्य धारा**

इस काव्यधारा में ईश्वर की सगुण व साकार रूप को स्वीकार्य किया गया है। इसमें राम तथा कृष्ण मुख्य आराध्य देव हैं। सगुण साधना में रूपोपासना का मुख्य स्थान है। सगुण भक्त कवियों को पूरा जगत भगवान का अवतार दिखाई देता है। इनके अनुसार जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब भगवान मानव रूपमें जन्म लेते हैं। ''कवि ज्ञान, कर्म, ऐश्वर्य, प्रेम आदि को भगवान के रूप मानते हैं, इसलिए इनमें लीलावाद का महत्व है। चाहे तुलसी के राम हो या सूर के कृष्ण दोनों लीलाकारी हैं। इनके अनुसार अवतार का उद्देश्य ही लीला है।''[16]इन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन किया है। इनके यहॉ जात–पांत का बंधन नहीं है क्योंकि इनका मानना है कि भक्ति पर सभी का समान हक है। संतों की भांति सगुण कवि गुरु को महत्ता देते हैं। ''वे गुरु को गोविंद से श्रेष्ठ मानते हैं। गुरू के बिना मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होने वाले पथ से भक्त पथ भ्रष्ट हो जाएगा।''[17]इस संदर्भ में तुलसीदास की ये पंक्तियॉ ध्यातव्य हैं –''श्री गुरू पद नख – मुनि गन ज्योति,सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।''इन कवियों ने लोक जीवन का

चित्रण किया है। कवियों ने अपनी–अपनी दृष्टिकोण के ज़रिए जनता के लिए राम और कृष्ण का वर्णन किया है। कृष्ण की बाल लीलाओं का चित्रण, राम की शील, शक्ति और सौन्दर्य का चित्रण कर भक्तों को कवि आनन्द के साथ–साथ यह विश्वास भी दिलाता है कि सत् की रक्षा और असत् का विनाश होता है। इन भक्त कवियों ने भक्ति के विभिन्न रूपों जैसे – श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य और आत्मनिवेदन का चित्रण कर अपने आराध्य की लीलाओं में मग्न होकर मोक्ष प्राप्त करने का प्रयास किया है। इनकी काव्य रचना का मूल उद्देश्य यही था। इन भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में राम व कृष्ण के अलावा अन्य देवी–देवताओं की स्तुति, ज्ञान, भक्ति व कर्म का तथा सगुण एवं निर्गुण में समन्वय की स्थापना की है। इनके काव्यों में राम और कृष्ण के साथ–साथ अन्य सभी पात्र आदर्श पात्र हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि वह पहले भक्त हैं फिर कवि हैं।

भाषा की दृष्टि से राम काव्य में शांत रस और कृष्ण काव्य में श्रृंगार रस मुख्यतः मिलता है। युद्ध के अवसर पर वीर और रौद्र रस का भी परिपाक हुआ है। इन सभी में मूल रस भक्ति है। उसी प्रकार दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैय्या आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। काव्य शैली की दृष्टि से लोक मंगल की भावना इनमें विद्यमान है तथा प्रबंध, गीत, संवाद, रीति आदि पद्धतियों का दर्शन होता है।

3.2.3 **प्रेम मार्गी सूफी काव्यधारा**

हिन्दी का सूफी साहित्य फारस में विकसित सूफी मत की साहित्यिक अभिव्यंजना है। ''सूफी कवियों ने प्रेमगाथाओं के रूप में उस

प्रेम तत्व का वर्णन किया है जो ईश्वर से मिलन का है तथा जिसका आभास लौकिक प्रेम के रूप में मिलता है।''[18] प्रमुख सूफी कवि और उनकी रचनाएँ हैं– कुतुबन–'मृगावती', मंझन–'मधुमालती', मलिक मुहम्मद जायसी–'आखिरी कलाम', उसमान–'चित्रावली', शेख नबी–'ज्ञानदीप', कासिमशाह–'हंस जवाहिर', नूर मुहम्मद–'इंद्रावती'। सूफी साधना के चार अंग बताए जाते हैं – शरीयत, तरीकत, मारिफत और हकीकत।

सूफीयों ने लौकिक प्रेम कहानियों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है। यह काव्य प्रबंध काव्य की कोटि में आते हैं, जो भारतीय महाकाव्य की शैली में लिखे गए हैं। इन काव्यों में प्रकृति वर्णन खूब हुआ है। इन कवियों ने अपने काव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण, ईश सत्ता, हज़रत मुहम्मद की प्रशंसा की है। इनके प्रबंध काव्यों में नायक–नायिका के देश, काल, आचार आदि का उल्लेख एवं कथा में गति लाने के लिए नायक–नायिका के साथ खलनायक–खलनायिका की भी सृष्टि हुई है। उनका प्रबंध काव्य कभी सुखांत या कभी दुखांत होते हैं, जिनमें दार्शनिक दृष्टि निहित होती है।सुफी काव्य के प्रमुख तत्व प्रेमभाव और श्रृंगार रस है। यहॉ नायक को आत्मा और नायिका को परमात्मा माना गया है। ''इस तरह के प्रेम के वर्णन में उन्होंने वियोग पक्ष को ज़्यादा महत्व दिया है क्योंकि उनके अनुसार वियोग जीवन होता है और मिलन–अंत।''[19]मंझन का विरह वर्णन –''कोटि माहि विरला जग कोई।/जहि सरीर विरह दुःख होई।।''विरह में बारह मासा वर्णन मिलता है। नायक–नायिकाओं के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। नायक को विभिन्न कठिनाईयों से जूझते निकलना पड़ता है और अंत में सफलता मिलती है। यहॉ ऐतिहासिक तथा काल्पनिक पात्र दोनों मिलते हैं। सूफी

काव्यों में अंधविश्वास, जादू टोना, लोकोत्सव आदि का चित्रण हुआ है। हिन्दू घराने की प्रेम कहानियों का भी वर्णन मिलता है। हिन्दू पात्रों में हिन्दू आदर्शों की प्रतिष्ठा की गई है। इन्होंने हिन्दू और मुसलमान पात्रों की सृष्टि में केवल मंडनात्मक शैली ही अपनाई है।

प्रेम का केन्द्र नारी है। नारी परमात्मा का प्रतीक है। इन्होंने नारी को संतों की भांति माया नहीं माना है बल्कि शैतान को माया माना है। भाषा परक दृष्टि से सूफी काव्यों में अव्यक्त सत्ता का आभास देते हुए रहस्यात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। इनमें सांकेतिक विधान पद्धति का अवलंब लेकर सांकेतिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनकी भाषा अवधि रही है। इसके अलावा भोजपुरीएवं ब्रज भाषा का भी प्रयोग हुआ है। दोहा, चौपाई, कुंडलियॉ आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। कहीं–कहीं अरबी–फारसी शब्द भी आए हैं। उपमा, अनुप्रास जैसे अलंकारों का अच्छा प्रयोग हुआ है।

3.3 रीतिकालीन हिन्दी कविता

रीतिकालीन साहित्य मुख्यतः संवत् 1700 से 1900 तक के कालखण्ड की रचना है। रीतिकाल में परलोक तथा मोक्षादि की चिन्ता नहीं है। इसमें जीवन के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण को अपनाया गया है। इस काल में मुख्यतः श्रृंगार रस की रचनाऍ लिखी गई हैं। ''रीति ग्रन्थों के कर्ता भावुक, सहृदय, और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों के शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना।''[20]इनमें अलंकारों की अपेक्षा नायिका भेद पर ज़्यादा झुकाव रहा है। नायिका श्रृंगार रस का आलंबन है। तत्पश्चात् इस आलंबन के अंगों

का वर्णन एक स्वतंत्र विषय बन गया और न जाने कितने ग्रन्थ केवल नखशिख वर्णन के लिखे गए। इसी प्रकार उद्दीपन हेतु प्रयोग में लाए गए षट्–ऋतु वर्णन पर भी कई पुस्तकें लिखी गई। विप्रलंभ संबंधी 'बारहमासा' वर्णन के भी कई रचनाएं हुईं। रीतिग्रन्थों का विकास अधिकतर अवध में हुआ था। इसलिए इस काल के काव्यों में अवधी का प्रयोग अधिक मिलता है।

3.3.1 **रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियॉ**

रीतिकाल में श्रृंगार प्रधान रचनाएँ लिखी गईं। श्रृंगार रस रसराज था जिसमें संयोग और वियोग का सुन्दर चित्रण हुआ है। दरबारी संस्कृति होने के कारण कवियों के लिए घोर श्रृंगारिक कविता लिखना बंधनकारक बन गया था। श्रृंगारी भावनाओं के कारण राधा–कृष्ण साधारण नायक–नायिका के रूप में चित्रित किए जाने लगे।''इस समय का प्रेम एकनिष्ठ न होकर वासनामय बन गया था। राजाओं को संतुष्ट करने के लिए नग्न श्रृंगार का चित्रण किया जाने लगा। कवि बिहारी, देव, मतिराम आदि के काव्यों में स्थूल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है। संयोग तथा वियोग पक्ष में विरह मिलन का वर्णन स्थल स्थल पर आया है।''[21]श्रृंगार के वियोग पक्ष में कवियों ने विरह की दस दशाओं का वर्णन किया है–स्मृति, अभिलाषा, उद्वेग, चिंता, प्रलाप, गुणकथन, उन्माद, जड़ता, व्याधि और मूर्च्छा।इस युग की कविताओं में मुख्यतः चमत्कार प्रदर्शन एवं रसिकता भरी पड़ी है। अपने आश्रयदाता का गुणगान गाना एंव सुन्दर नारियों का नख–शिख वर्णन उस समय के कविताओं का मुख्य प्रतिपाद्य विषय एवं लक्ष्य था। ''उक्ति चमत्कार के द्वारा पाठक और

श्रोता के मन को आकृष्ट कर लेना इस युग के कवियों का लक्ष्य और सफलता का मापदण्ड बन गया था।''[22]इस आलंकारिकता का एक और कारण अलंकार शास्त्र का हू–ब–हू कविता में प्रयोग करना है। कई कवियों ने अलंकार के लक्षण और उदाहरण भी रचे हैं। अलंकार योजना साधन से साध्य बन गया। परन्तु उसमें भी विविधता कम और रूढ़िबद्धता अधिक थी क्योंकि रीतिकालीन कवि संस्कृत के अलंकार शास्त्र के उपमानों को लेकर उनका ही प्रयोग करता रहा। इन्होंने उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग अधिक किया है। ''संभावनामूलक उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग इस काल के कवियों ने खूब किया है। इसका कारण यह है कि इसमें कल्पना की उड़ान और चमत्कार प्रदर्शन की काफी छूट रही है। चमत्कारमूलक अलंकारों में से श्लेष, यमक और अनुप्रास का अधिक प्रयोग हुआ है।''[23]

रीतिकालीन कवियों की रचनाओं में यदा–कदा भक्ति और नीति की छटा देख सकते हैं। परन्तु भक्ति और नीति के अंशों को पाकर उन कवियों को भक्त या नीति निष्णात कवि नहीं मान सकते हैं। यदि इनकी रचनाओं में भक्ति या नीति के अंश पाए जाते हैं तो वह भी श्रृंगारिकताका अंश ही होता है। इस काल की रचनाओं में श्रृंगारिकता अधिक है परन्तु इन्होंने कभी भी अपने पूर्ववर्ती युग के प्रमुख रचना स्त्रोत भक्ति की अवज्ञा नहीं की है। भक्ति प्रधान रचनाएं भी इस काल में प्राप्त होती हैं। ''भौतिक रस की उपासना करते हुए उसके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति रस में अनास्था प्रकट करते या उसका सैद्धांतिक निषेध करते। यह जीवन की अतिशय रसिकता से घबराते भी थे और रीतिकालीन भक्ति एक ओर सामाजिक कवच और

दूसरी ओर मानसिक शरण–भूमि के रूप इनकी रक्षा करती थी।''[24]रीतिकालीन कवि मुक्तक शैली का प्रयोग अधिक करते थे। इनका मुख्य उद्देश्य चमत्कार प्रदर्शन था जिससे वह अपने आश्रयदाताओं की वाह–वाही लूट सके तथा अधिक से अधिक धन प्राप्त कर सके। इनके काव्यों में कवित्त, सवैया, दोहा, जैसे छन्दों का प्रयोग हुआ है जो चमत्कार प्रदर्शन, श्रृंगार रस, वीर रस आदि के सफलतापूर्वक प्रस्तुतीकरण में सक्षम हैं। ब्रज भाषा रस काल की प्रमुख भाषा है। रीतिकाल के मुक्तक कवियों को सजाना व संवारना और श्रृंगार रस के बेहतरीन अभिव्यक्ति को पाने के मुख्य उद्देश्य को लेकर अधिकतर कवि अपना काव्य ब्रजभाषा में रचते थे। इस काल में ब्रज भाषा एक मुख्य काव्य भाषा के तौर सर्वांगीण विकास पा रहा था, जिसमें अवधी, अरबी, फारसी, राजस्थानी, बुन्देलखण्डी आदि से कोमल एवं व्यंजक शब्द ब्रजभाषा के कोश में स्थान ग्रहण कर रहा था।''यह काल ब्रजभाषा की चरमोन्नति का काल है। इस समय ब्रज भाषा में विशेष निखार, माधुर्य और प्रांजलता का समावेश हुआ और भाषा में इतनी प्रौढ़ता आई कि भारतेन्दु काल तक कविता क्षेत्र में इनका एकमात्र आधिपत्य रहा।''[25]

रीतिकाल के कवि आचार्य कर्म और कवि कर्म दोनों को एकसाथ ले जाने वाले हैं। रीतिमुक्त कवियों को छोड़कर प्रायः सभी कवियों ने लक्षण ग्रन्थों का निर्माण किया है। इस काल में वीर रस प्रधान रचनाएँ भी मिलती हैं। रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति के स्वतंत्र रूप का चित्रण कभी नहीं किया। प्रकृति आलम्बन रूप में इन काव्यों में आता है। नायक और नायिका के मनोदशा के अनुरूप प्रकृति चित्रण होता है। उनके संयोग से प्रकृति उत्फुल्लित हो उठती है और उनके वियोग से वह

दुखदकारी बन जाती है। प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण षट्ऋतु वर्णन तथा बारहमासा वर्णन की पद्धति पर हुआ है।इस काल के कवियों ने नारी को केवल भोग विलास की वस्तु के रूप में दिखाया है। इन कवियों ने नारी के अंग–प्रत्यंग की शोभा, हाव–भाव और चेष्टाओं का वर्णन किया है। इनके लिए नारी के महत्व का एकमात्र कसौटी उसके सुन्दर होने में है। यहॉ तक कि रीति कवियों ने स्त्री–पुरुष के यौन संबंधों का भी वर्णन किया है। ''इस एकांगी दृष्टिकोण के कारण वह नारी जीवन के सामाजिक महत्व, उसके श्रद्धामय रूप और उसकी मातृशक्ति को देख नहीं सके। वह केवल तनद्युति का अनुरागी था और उसका वह अनुराग यहॉ तक बढ़ चुका था कि वह अपनी आराध्य देवी के भी शारीरिक लावण्य पर ही रीझता रहा है''[26]– 'तजि तरिथ हरि–राधिका तन दुति करू अनुराग।'रीति कवियों का व्यक्तित्व, आजीविका और भावाभिव्यक्ति आश्रयदाता की कृपा दृष्टि पर अवलम्बित है। इसलिए इन कवियों में एक दूसरे से श्रेष्ठ होने की होड़ थी। श्रृंगार रस प्रधान रचनाओं के अलावा इन कवियों ने ज्योतिष, सामुद्रिक शास्त्र, कामशास्त्र, राजनीति, पाकशास्त्र, संगीतशास्त्र आदि पुस्तकों की भी रचना की है। इस काल के कवि संस्कृत के शास्त्र ग्रन्थों पर अधिक रूचि रखते थे और उनकी रचनाएं इन्हीं पर आधारित होती थी। इस काल के प्रमुख रचनाकार हैं – केशवदास, पद्माकर, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण आदि।इस प्रकार देखें तो रीतिकाल के कवियों ने जीवन और यौवन की रमणीय पक्ष को दिखाया है। उनके लिए जीवन एक उत्सव है। उसमें प्रेमी और प्रेमिका का सुन्दर मिलन है, विरह वेदना है, नायिका का

नख–शिख वर्णन है, भाषा का परिमार्जन, सौष्ठव और प्रौढ़ता है, उक्ति वैचित्र्य तथा चमत्कार प्रदर्शन है।

3.4.आधुनिक हिन्दी कविता

आधुनिक काल के प्रथम चरण को भारतेन्दु काल कहा जाता है। यह काल सन् 1850 से 1900 तक है। इस काल में मुख्यतः राष्ट्रीयता, प्रकृति चित्रण, श्रृंगारपरक, आदि काव्य रचना के विषय रहे हैं। इस काल की काव्य भाषा मुख्यतः ब्रज थी। यह वह समय था जब साहित्यिक रचनाओं में पश्चिमी विचारधारा का प्रभाव गहरे रूप से पड़ रहा था। अंग्रेज़ों के नवीन आर्थिक नीतियॉ, नवीन शिक्षा प्रणाली, संचार साधनों का विकास, प्रेस आदि ने भारतीय समाज में एक बड़ा परिवर्तन लाया। उसी प्रकार सामाजिक संस्थाएँ जैसे ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसॉफिकल सोसाइटी आदि ने समाज के विचारधारात्मक मण्डल में परिवर्तन की एक नयी लहर उठा दी। इसके साथ–साथ सन् 1857 की क्रांति तथा इंडियन नेशनल कॉग्रेस की स्थापना ने भारत के युवा मन में एक नई सोच का संचार किया। इस तरह के सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं ने भारतीय समाज तथा साहित्यिक क्षेत्र में गहरा असर छोड़ा जिसके फलस्वरूप एक नई राष्ट्रीयता की धारा चल पड़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि संपूर्ण भारतवर्ष को एक अखण्ड देश की अवधारणा प्राप्त हुई। साहित्यिक क्षेत्र में एक साथ प्राचीन तथा नवीन साहित्यिक परंपराओं का अनुसरण हुआ है। यह राजभक्ति के साथ साथ देशभक्ति, अंग्रेज़ राज का गुणगान तथा उसका घोर विरोध जैसे अन्तर्विरोधी विचारधारा से युक्त काल था।

3.4.1 **भारतेन्दु युगीन काव्यः–** इस काल में कवि की अपेक्षा समाज सुधारक, प्रचारक और पत्रकार अधिक हैं। यह नवजागरण का युग था। अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार–प्रसार व्यापक रूप से हो रहा था। कुछ लेखक भारत के अतीत का गुणगान कर रहे थे, तो कुछ पुरानी श्रृंगार प्रधान रचना विधान का अनुसरण कर रहे थे और कुछ पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव एवं सामाजिक संस्थाओं के प्रवर्तन से उत्पन्न सामाजिक जागरण से प्रेरणा पाकर देश की राजनीतिक–आर्थिक दासता, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध जैसे रूढ़िवादी सामाजिक प्रथाओं के विरुद्ध कविता के द्वारा आवाज़ उठा रहे थे। यह काल काव्य के क्षेत्र में ब्रज भाषा से खड़ी बोली में संक्रमण का काल है। ''हिन्दी की आधुनिक कविता की शुरूआत ब्रजभाषाको छोड़कर खड़ी बोली से होती है। वैसे ही भक्ति और श्रृंगार से उपराम होकर राष्ट्रीयता से। कविता में खड़ी बोली का व्यापक आरंभ श्रीधर पाठक से दिखता है। राष्ट्रीयता की तीव्र अनुभूति भारतेन्दु से ही उभरनेलगती है। अध्यात्मिकता से ऐहिकता, की ओर झुकाव आधुनिक हिन्दी कविता की पहली बड़ी विशेषता कही जा सकती है।''[27]

भारतेन्दु युग की मुख्य उपलब्धि यह है कि इसके पूर्व रीतिकाल में वैयक्तिक श्रृंगारमयी काव्य धारा पर बल रहा, इसके स्थान पर कविगण समाज और राष्ट्र को उद्‌बोधन देने वाली लोकमंगलकारी दृष्टि की ओर उन्मुख होने लगे। ''नवजागरण काल में कवियों का ध्यान देश, समाज और जनसामान्य की ओरगया। अतः उन्होंने सजग होकर काव्य के विषय और काव्य शिल्प दोनों में परिवर्तन करते हुए कविता को जनसाधारण के बीच पहुँचाने का प्रयास किया।''[28]इस काल के प्रमुख प्रवृत्तियॉ हैं – सामाजिक चेतना, भक्ति भावना, श्रृंगाकिरकता, प्रकृति चित्रण,

हास्य–व्यंग्य, रीति निरूपण, समस्यापूर्ति, राष्ट्रीय चेतना, अभिव्यंजना शैली, काव्यानुवाद, छन्द बद्ध काव्य सर्जना तथा ब्रजभाषा के परंपरागत प्रयोग से आगे बढ़कर खड़ी बोली का प्रयोग।

भारतेन्दु काल के काव्यों में समाज सुधारक एवं राष्ट्रीयता की भावना पहली बार प्रखर रूप से पाई गई। इसमें समाज एवं धर्म के रूढ़ियों के खिलाफ रचनाएँकी गईं। ''इस काल की कविता में 1857 की क्रांति का प्रभाव है। इसमें अंग्रेज़ों द्वारा देश की आर्थिक शोषण का विरोध हुआ है। इसमें धर्म की प्राचीन रूढ़ियों से मुक्त कर नया दिखाने का प्रयास हुआ है। इसने रीतिकालीन जड़ता से काव्य को मुक्त किया है।''[29]भारतेन्दु ने काव्य भाषा से पुराने शब्दों को हटाकर समयानुकूल नए शब्दों को स्वीकारा है। भारतेन्दु मण्डली के कवियों ने काव्य में अभिनव छन्द विधान तथा मुक्तक का प्रचलन किया है। आधुनिक काल हिन्दी काव्य का संक्रमणकाल है। इसमें सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन का यथार्थ अपनी पूरी विसंगतियों के साथ उभरा है और समाज के नए मूल्यों के निर्माण में गति दी है। ''आधुनिकता अपने साथ ऐसे विचार और चिंतन लाई है जिन्होंने मानव जीवन को मध्यकालीन रूढ़ियों, अंधविश्वासों और तज्जन्य विकृतियों से मुक्त कर व्यक्ति स्वातंत्र्य और समाज निर्माण के नये धरातल पर प्रतिष्ठित किया है।''[30]इस काल के प्रमुख कवि हैं – अंबिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण प्रेमघन, ठाकुर जगमोहन सिंह, बाबू रामकृष्ण वर्मा, लाला सीताराम, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, श्रीधर पाठक, जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण', वियोगी हरि, दुलारेलाल जी भार्गव।

भारतेन्दु काव्य के कवियों ने रीतिकाव्य के रूढ़िग्रस्त परंपराओं और संकीर्ण सामंति अभिरुचियों वाली काव्य परिपाटियों के दायरे से बाहर आकर जीवन के यथार्थ का चित्रण करने में सफल हुए हैं। यद्यपि काव्य मुख्यतः ब्रजभाषा में लिखी जा रही थी, फिर भी वह देश की उस वक्त की दशा को स्पष्ट रूप से दिखा रही थी। ''भारतेन्दु मण्डल के कवियों की मौलिकता यह है कि उन लोगों ने रीतिकाल के प्रति विद्रोह किया है। दरबारी काव्य परंपरा, नख–शिख वर्णन की प्रणाली, नायक–नायिका भेद, कविता को कुछेक खास विषयों तक सीमित रखने की दृष्टि, चमत्कार प्रियता, चित्रकारी और रूप विधान पर अधिक बल – इन सब से हिन्दी कविता को मुक्त किया है।''[31]पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली तथा ज्ञान विज्ञान प्रचार–प्रसार से विश्वबोध व आधुनिक विवेक का उदय हुआ इससे नई पीढ़ी के कवियों ने पुरानी पीढ़ी के जर्जर रूढ़ियों के विरुद्ध नई विचारधारा को स्वीकारा। इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियॉ हैं–

3.4.1.1.**देश–प्रेम** : अंग्रेज़ों के कुनीतियों के विरुद्ध इस काल में बहुत कविताएँ लिखी गईं। ''देश के विभिन्न जाति, धर्म एवं भाषा के महत्ता के बारे में साधारण जनता में जागरण पैदा करने तथा अंग्रेज़ी शिक्षा और संस्कृति से नष्ट हो रही भारतीयता पर इन कवियों ने गहरी चिंता प्रकट की है।''[32]

3.4.1.2.**भक्ति–भावना** : इस काल में मुख्य रूप से राधा–कृष्ण की भक्ति संबंधी रचनाएँ लिखी गईं।

3.4.1.3.**हास्य–व्यंग्य** : इन कवियों के काव्यों में हास्य शिष्ट और सोद्देश्य होते हैं। इनके मुकरियों में यह अधिकतर देखा जा सकता है।

3.4.1.4.**सामाजिक जागरण** : इन कवियों के काव्यों में स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, वर्ण भेद का त्याग आादि का पक्ष किया है। उसी प्रकार अनमेल विवाह, बाल विवाह आदि का विरोध हुआ है।

3.4.1.5.**प्रकृति चित्रण** : प्रकृति का सुंदर चित्रण इन कवियों ने किया है। इनकी कविताओं में प्रकृति का मानवी–रूप देखने को मिलता है।

3.4.1.6.**भाषा–प्रेम** : भारतेन्दु और उनके मण्डली के सभी कवियों ने अपनी कविताओं में भारतीय भाषाओं के प्रति संवेदनशील रहे हैं। अंग्रेज़ों के शिक्षा प्रणाली के विरुद्ध इन कवियों ने घोर विरोध किया है।

3.4.1.7.**जन काव्य** : इन कवियों ने साधारण से साधारण विषयों को लेकर रचनाएँ की हैं। इनकी भाषा भी सरल होती थी। यह अधिकतम जनसाधारण विषयक कविताएँ जैसे महामारी, आर्थिक विघटन, शोषण, सूखा आदि होती थीं।

इस काल के कुछ प्रमुख कवि और उनकी कविताएँ ये हैं –लाला भगवानदीन – 'वीर क्षत्राणी', 'वीर बालक', कामता प्रसाद गुरू– 'भौमासुर वध', 'अन्योक्ति शतक', गंगाप्रसाद शुक्ल'सनेही'– 'प्रेम पचीसी', 'कृषक क्रंदन', ठाकुर गोपालशरण सिंह– 'मानवी', 'संचिता', गोपालसिंह 'नेपाली'– 'उमंग', 'पंछी', जगन्नाथदास 'रत्नाकर'– 'समस्यापूर्ति', 'श्रृंगार लहरी' आदि।

3.4.2. **द्विवेदी युगीन काव्यः–** यह समय जागरण सुधार का काल माना जाता है। इस काल के दौरान संपूर्ण देश में जो स्वतंत्रता आन्दोलन की एक नई लहर दौड़ी उसी के साथ–साथ साहित्यिक क्षेत्र में भी राष्ट्रभक्ति

का नारा बुलन्द हुआ। इस काल की कविताओं में समाज सुधारा के साथ–साथ राष्ट्र प्रेम की भावना से ओत–प्रोत कविताएँ भी लिखी गई। इस युग के प्रवर्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं। यह एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने न सिर्फ तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप साहित्यिक रचनाएँ की बल्कि औरों को भी प्रोत्साहन देते रहे। भारतेन्दु काल में लिखे जा रहे ब्रज भाषा काव्यों से पृथक हिन्दी भाषा को अधिक महत्व देकर साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी खड़ी बोली का अधिक प्रयोग व उसके सुधार कार्य में जुटे रहे। ''हिन्दी भाषा के परिमार्जन एवं एकरूपता बनाने में सर्वाधिक अहम भूमिका आचार्य द्विवेदी की ही रही है। उन्होंने हिन्दी काव्य को परंपरा मुक्त किया, कवियों को समाजोत्थान की भावना से अवगत कराया तथा राष्ट्रीयता का शंख ध्वनित करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया।''[33]

द्विवेदी युगीन कवियों का मुख्य स्वर राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का है। इन कवियों ने सामाजिक रूढ़ियों व धार्मिक आडम्बरों के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह का स्वर अपनाया है। इनकी कविताओं में नवीन मानवतावादी दृष्टिकोण का दर्शन होता है। इन्होंने मुख्यतः खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठा दी। इनके समय काव्य के कई रूप सामने आए जैसे – महाकाव्य, खण्डकाव्य, लघुपद्यकाव्य, मुक्तक, प्रबंध मुक्तक आदि। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग एवं प्रचार हुआ। काव्य भाषा पूरी तरह ब्रज से खड़ी बोली में परिवर्तित हुआ। भाषा एवं काव्य के आंतरिक घटन में परिवर्तन लाया गया। ''युग निर्माता द्विवेदी जी ने सदैव शुद्ध, व्याकरण सम्मत भाषा लिखने का कवियों से आग्रह किया। काव्य में

व्याप्त शैथिल्य को दूर कर उन्होंने नई अभिव्यंजना प्रणाली को जन्म दिया।''[34]

इस काल के कवियों ने ईश्वर के स्थान पर मानव को महाकाव्य के नायक के रूप में प्रस्तुत किया। राम, कृष्ण, सीता, राधा आदि पात्र ईश्वर की कोटि से नीचे साधारण मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किए गए। ऐसे पात्र जो विश्व–बंधुत्व एवं सबके हित के लिए हैं। मानव सेवा ही ईश्वर सेवा बन गई। मनुष्य में ईश्वर के दर्शन हुए। इसका उदाहरण गुप्त जी का वह काव्य पंक्तियॉ हैं –''भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,/नर को ईश्वरत्व प्राप्त कराने आया,/संदेश यहॉ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,/इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।''समकालीन सामाजिक समस्याएॅ जैसे – धार्मिक असहिष्णुता, कट्टरता, जाति–पांति विचार, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, सति प्रथा आदि का घोर विरोध इस समय के कवियों ने किया है। पुराने जर्जर रूढ़ियों और मान्यताओं का विरोध कर एक नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करने का प्रयास किया है। धर्म, जाति, वर्ण भेद के स्थान पर देश की एकता और अखण्डता को दिखाने तथा देश प्रेम की भावना को जगाने का प्रयास इन कवियों ने किया है। ''द्विवेदी युगीन काव्य में मानव सत्यता, सात्विक ओज, प्रवाह, जीनोष्मा तथा बल है। इसमें भारतीय राष्ट्र के जीर्णोद्धार तथा नव निर्माण के शिवसंकल्प की जीवंत प्रेरणाएॅ झलक रही हैं।''[35]वर्तमान सामाजिक एवं सांस्कृतिक भावना को बुलंद करने हेतु इन कवियों ने भारत के अतीत से बहुत प्रभाव ग्रहण किया है। इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियॉ हैं :–

3.4.2.1.**राष्ट्रीयता की भावना** : कवियों की चिन्ता स्वदेश प्रेम की रचनाएं करने में थी। इस काल में भारत के अतीत का गौरव गान खूब हुआ है। यह इस समय की मॉग थी क्योंकि देश की जनता परतंत्रता के खिलाफ जागरूक हो रही थी। जनता का मनोबल बढ़ाने तथा उनका आत्माभिमान बनाए रखने हेतु इस काल के कवियों ने भारत के अतीत को गौरवशाली इतिहास घोषित कर आम जनता में गर्व का एहसास जगाया है। इन कवियों ने देश की दुखपूर्ण अवस्था, विदेशी शासन द्वारा जनता का शोषण, धर्म के नाम परलोगों की आपसी लड़ाई आदि विषयों पर अपना विचार प्रकट किया है। उन्होंने अपनी कविताओं के जरिए देश की एकता पर बल दिया।

3.4.2.2.**मानवतावादी दृष्टि का उन्मेष** : इन कवियों ने इंसान के उदान्त भावों को जैसे करुणा, स्नेह, दया, परोपकार, भाईचारा आदि पर अपनी कविताओं द्वारा बल दिया है। ''एक ओर श्रीधर पाठक ने विधवाओं की दीन दशा के चित्र अंकित किए तो दूसरी ओर हरिऔध ने अछूतों के प्रति करुणा जगाई। स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, दहेज आदि विषयों पर तो कविताएं लिखी ही गईं, नारी का उदात्त रूप–उसका त्याग, बलिदान, सहिष्णुता, निष्ठा और मानव प्रेम–प्रस्तुत कर भारतीय नारी के मन में आत्मविश्वास और आत्मगौरव की भावना जगाई।''[36]

3.4.2.3.**स्वाधीनता हेतु संघर्ष की भावना** : द्विवेदी युगीन कवियों में विद्रोह की भावना जागृत हो रही थी। उनका एकमात्र स्वप्न था, स्वाधीनता। ''पराधीनता और अंग्रेज़ों के दमन के विरुद्ध वे सर्वस्व समर्पण करने को तैयार थे।''[37]मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन

जैसे कवियों ने अपनी कविताओं के ज़रिए स्वाधीनता संग्राम में अपना अदायगी निभा रहे थे।

3.4.2.4.**बौद्धिकता का प्रबल प्रदर्शन** : भारतुन्दु युग की कविताओं में जो प्रवृत्तियॉ थीं जैसे अन्ध–देशभक्ति, अंग्रेज़ों के सरकार का गुणगान, पाश्चात्य रचनाओं का अनुकरण व उसका अनुवाद आदि से अलग द्विवेदी युग के कवियों ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया है। राम–सीता, राधा–कृष्ण जैसे अध्यात्म चरित्रों को इन कवियों ने साधारण स्त्री–पुरूष के रूप में दिखाया है।

3.4.2.5.**प्रकृति चित्रण** : इस युग के कवियों ने अपने काव्यों में प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण कवियों ने किया है।

3.4.2.6.**हास्य–व्यंग्य की परंपरा** : इस युग के कवियों ने पश्चात्य अन्धानुकरण, धर्माडम्बर, जाति प्रथा, सामाजिक कुरीतियॉ, धार्मिक रूढ़ियॉ आदि की निरर्थकता को हास्य तथा व्यंग्य–परक रचनाओं द्वारा व्यक्त किया है।

3.4.2.7.**छंद–वैविध्य** : द्विवेदी युगीन रचनाएँ हिन्दी भाषा के सुधार और परिष्करण के दौर से भी गुज़र रहा था। इसलिए इसमें कई प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। दोहा, कवित्त, सवैया, मंदाक्रांता, शिखरिणी, शार्दूलाक्रीड़ित आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। साथ में मुक्तक छन्द का प्रयोग भी होता रहा।

3.4.2.8.**भक्ति–भावना** : द्विवेदी युग की कविताओं में राम और कृष्ण की भक्ति संबंधी रचनाएँ भी आती हैं।

3.4.2.9.**समाजोत्थान की भावना** : द्विवेदी युगीन कवियों ने अपनी कविताओं के संदर्भ और उनके पात्रों के ज़रिए एक समाज की ओर ज़ोर दिया है। हरिऔध के 'प्रियप्रवास', गुप्त जी का 'साकेत' आदि इसके उदाहरण हैं।

3.4.2.10.**श्रृंगारी–भावना** : इस काल के कवियों ने श्रृंगार का कामोत्तेजक भाव को न लेकर सात्विक भाव को ग्रहण किया है। श्रृंगार के वर्णन के दौरान संयोग–वियोग, आकांक्षा, उल्लास, उत्साह, हाव–भाव अभिलाषा आदि का चित्रण हुआ है परन्तु कहीं भी अश्लीलता के स्तर तक नहीं गया है।

3.4.2.11.**नारी चित्रण** : द्विवेदी युग में नारी केवल संभोगकी वस्तु नहीं है बल्कि वह विचारशील, कर्तव्यनिष्ठ, संयमी, पवित्र एवं आदर्श नारी है। इस युग के कवियों ने नारी को केवल कामरूपा, विलासिनी, कामिनी आदि रूपों में नहीं बल्कि मॉ, देवी, बहिन, सहचरी आदि रूपों में भी दिखाया है।इस काल के कुछ प्रमुख कवि एवं उनकी रचनाएँ हैं –मोहनलाल मेहतो 'वियोगी' – 'एक तारा', 'निर्माल्य', 'कल्पना', श्री हरिकृष्ण प्रेमी – 'ऑखों में', 'जादूगरनी', 'अनन्त के पद पर', उदयभानु हंस – 'संत सिपाही', 'धड़कन', 'सरगम', अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'– 'प्रियप्रवास', 'वैदेही वनवास', 'काव्योपवन', मैथिलीशरण गुप्त – 'भारतभारती', स्वदेश संगीत', 'पंचवटी', 'साकेत', माखनलाल चतुर्वेदी– 'हिम किरीटिनी', 'हिम तरंगिनी', 'युग चरण', वियोगी हरि – 'प्रेमांजलि', 'वीणा', 'प्रेम पथिक'।

द्विवेदी युगीन कवियों पर रामदरश मिश्र जी के विचार उल्लेखनीय हैं कि – ''द्विवेदी युग के कवियों ने जो उपेक्षित पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रों को या उनके उपेक्षित व्यक्तियों को एक सीमा में महत्व और आधुनिक स्पर्श देने का प्रयास किया है, वह प्रकारांतर से व्यक्ति की चेतना को मुक्त करने की दिशा में एक स्तुत्य आरंभ था, किन्तु उनका काव्य प्रयास तो समाज और राष्ट्र को गढ़ने या पुराने नैतिक मूल्यों को आधुनिक संदर्भों में पुनःनिर्मित करने का था।''[38]

3.4.3. **छायावादः**सन् 1918 में इस काव्य प्रवृत्ति का आरम्भ होता है। काव्य के इस प्रवृत्ति में यूरोप के रोमांटिसिसम और रवीन्द्रनाथ टैगोर के रहस्यात्मक काव्यों का प्रभाव पड़ा है। यहॉ काव्य की मनोभूमि मुख्यतः प्रकृति के विभिन्न भावों की अभिव्यंजना करने में तल्लीन है। छायावाद ने पुरातन सामाजिक रूढ़ियों, पवित्रतावादी नैतिक बंधनों एवं इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध विद्रोह किया है। छायावाद के प्रमुख कवि हैं – जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा। छायावादी कविताओं में प्रकृति क्रियाशील है और गतिशील भी।''छायावाद मुक्त व्यक्ति चेतना के महत्व की स्वीकृति का काव्य है। उसने सच्चे अर्थों में मध्यकालीन सामंती समाज और सभ्यता के रूढ़, परिपाटिबद्ध संस्कारों, मूल्यों और बोधों के प्रति क्रांति की और एक सर्वथा नवीन अनुभूतिजन्य स्वच्छन्द भावसत्य और सौन्दर्यबोध को वाणी दी।''[39]

छायावाद में व्यक्ति और समाज की नियति का अपेक्षाकृत अधिक मनोवैज्ञानिक और संश्लिष्ट स्तर पर आंकलन हुआ है। छायावाद में कल्पना मुख्य रूप काव्य विधायक तत्व के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान, उपचार वक्रता व स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं। छायावाद मुख्यतः प्रेम सौंदर्य का काव्य है। इसमें नारी, प्रकृति, जीवन और संसार के प्रति सर्वथा नया दृष्टिकोण अपनाया गया है। महादेवी वर्मा के अनुसार – ''छायावाद का दर्शन सर्वात्मवाद का दर्शन है।'' ''छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहॉ उसका संबंध काव्यवस्तु से होता है अर्थात जहॉ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। दूसर है –अध्यात्मिक या ईश्वर प्रेमसंबंधी कविताओं के अतिरिक्त और सब प्रकार की कविताओं के लिए भी प्रतीक शैली का प्रयोग। प्रतीक में भी अप्रस्तुत प्रतीक का प्रयोग अर्थात् प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।''[40] छायावाद के संबंध में अन्य आलोचकों का मत इस प्रकार है :–

3.4.3.1**छायावादी काव्य की प्रवृत्तियॉ**

3.4.3.1.1. **सर्वात्मवादी भावना :** प्रकृति आत्मा की ही छाया है। जगत के सभी रूपविराट सत्ता के विविध रूपहैं।

3.4.3.1.2.**अध्यात्मिक चेतना :** छायावादी काव्यधारा का एक अध्यात्म पक्ष है, परन्तु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। उसे हम बीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं। ''मानव और प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में अध्यात्मिक छाया का भान छायावाद है।''[41]

3.4.3.1.3. **जनतांत्रिक चेतना :** छायावादी काव्य में नए जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा और स्वतंत्र प्रयोग की प्रवृत्ति है। आत्मपरक भावसाधना में मानवता के लिए सहानुभूति है। शताब्दियों से पीड़ित शोषित नर–नारी के दुख–दर्द इन्हें प्रभावित किया है। अतः इसमें मानव प्रेम है।

3.4.3.1.4. **वैयक्तिक चेतना :** इसमें वैयक्तिक अनुभूतियों का प्रदर्शन हुआ है। व्यष्टि का समष्टि में और समष्टि का व्यष्टि में आरोप इसकी विशेषता है। इसमें 'मैं' शैली का प्रयोग हुआ है। कवि अपने निजी अनुभूतियों की रागात्मक अभिव्यंजना करता है। कवि प्राकृतिक जीवन में भी अपनी निजता, स्वतंत्रता और आत्मभाव देखता है। महादेवी वर्मा का मत है – ''इस व्यक्ति प्रधान युग में व्यक्तिगत सुख दुख अपनी अभिव्यक्ति के लिए आकुल थे, अतः छायायुग का काव्य स्वानुभूति होने के कारण वैयक्तिक उल्लास – विषाद का सफल माध्यम बन सका।''''वन गुहा कुंज मरू अंचल में हूँ खोज रहा अपना विकास''– जयशंकर प्रसाद

3.4.3.1.5. **मानव और प्रकृति का सह–संबंध :** छायावादी कवि प्रकृति के हर चराचर पर मानवी भावों और अभिव्यक्ति का आरोप किया है। यह कवि प्रकृति में चेतना का अनुभव पाते हैं। इन्हें प्रकृति के मूक चित्रोंमें मानवोचित हृदय की प्रतिष्ठा की है। इन्होंने प्रकृति का मानवीकरण किया है।

3.4.3.1.6. **नारी सौन्दर्य :** रीतिकाल से भिन्न छायावाद में नारी के मांसल चित्र के स्थान पर देवी, मॉ आदि सात्विक रूपों का चित्रण हुआ है। इन्होंने रूप का सौन्दर्य नहीं आत्मा का सौन्दर्य देखा है। इन कवियों ने नारी को पुरूष की सहचरी और सम्बल के रूप में चित्रित किया है।

छायाावादी कविताओं में नारी प्रेम और सौन्दर्य की चेतना बनकर उभर आई है। उसे प्रेरणा स्रोत के रूप में दर्शाया गया है। ''नारी सौन्दर्य चित्रण के मूल में – स्वातंत्र्य प्रेम, स्थूलता की परिसमाप्ति, प्रेम के सूक्ष्मतर नवीन रूप, प्रत्यक्ष और परोक्ष में प्रेम की प्रकृति में परिवर्तन, जीवन में सरसता का संचार आदि तथ्यों का समावेश पाया गया है।''[42]

3.4.3.1.7. **प्रकृति–प्रेम :** दार्शनिक अनुभूति के अनुरूप काव्यवस्तु का चयन करने में छायावादी कवियों ने प्रकृति के अपार क्षेत्र से यथेष्ट सामग्री ग्रहण की है। इन्होंने प्रकृति के बाह्य एवं आंतरिक दोनों रूपों का चित्रण किया है।

''प्रकृति उद्दीपन न रहकर आलम्बन के रूप में उपस्थित हुई है। कवियों ने उसके भीतर चेतना की अन्तःसत्ता का अनुसंधान कर उसके साथ एक नवीन रागात्मक संबंध स्थापित किया है।''[43]प्रकृति का चित्रण बिम्ब और मिथक के रूप में अधिक हुआ है। वे प्रकृति प्रेम के मूल में व्यक्तिगत स्वच्छंदता की आकांक्षा तथा व्यक्तिगत स्वाधीनता का प्रतिफल मानते हैं।

3.4.3.1.8. **प्रेम और सौन्दर्य चेतना :** छायावादी काव्यों में मानवीय प्रकृति के मूल मनोभावों को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से दर्शाया है। उसमें मनुष्य के क्रियात्मक और भावात्मक विकास का सामंजस्य प्राप्त होता है। ''छायावाद का मुख्य संबंध मानवीय जीवन की अनुभूति से है। मानव जीवन की इकाईयों तथा प्रकृति के भीतर जो अध्यात्म तत्व की झलक देखते हैं, उन्हें व्यष्टि सौन्दर्यबोध के ज्ञापक या छायावादी कहते हैं।''[44] प्रेम का आदर्श रूप छायावादी कवियों ने प्रस्तुत किया है। अतः प्रेम का

इस उदात्तीकरण का आदर्शीकरण के कारण छायावाद में व्यक्तिगत प्रेम विश्वप्रेम में और मानवीय प्रेम प्रकृति प्रेम में बदल गया। प्रिय की छवि, लौकिक हो या अलौकिक, विश्व प्रकृति के भीतर प्रतिबिम्बित होता है।

''छायावादी कवियों का प्रेम केवल दाम्पत्य संबंध और प्रकृति के प्रति रागात्मक संबंध तक ही सीमित नहीं रहा, उसका प्रसार अपने देश, जाति और संस्कृति, विश्वमानव तक की विस्तृत भूमियों तक हुआ।''[45]

3.4.3.1.9. **कल्पना की प्रचुरता :** छायावादी कवि सत्यान्वेषी अन्तर्दृष्टि वाले कवि थे। इसलिए इनकी कल्पना अतिशय कल्पना की सीमा तक जाती है। इसका प्रमुख कारण इनके अज्ञात के प्रति जिज्ञासा, परमात्मा से मिलन की लालसा, तथा प्रकृति के प्रति विस्मय और कुतूहल की भावना है।

3.4.3.1.10. **काव्य–संवेदना :** प्रेम की अभिव्यंजना में भोग की अपेक्षा त्याग और बलिदान है। संयोग की अपेक्षा वियोग का चित्रण है। छायावादी कवियों के काव्य का संचरण स्थूल से सूक्ष्म की ओर, दृश्य से भाव की ओर तथा गोचर से अगोचर की ओर है।

3.4.3.1.11. **विद्रोह की भावना :** इन्होंने सामाजिक रूढ़ियों और सामाजिक अव्यवस्था के प्रति विद्रोह किया है। इन्होंने परंपरागत काव्य विषयों और रूढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह किया है। छायावादी कवियों ने सामाजिक बंधनों, मर्यादाओं और वर्जनाओं की भी अवहेलना की है।

3.4.3.1.12.**शिल्प पक्ष :** छायावादी कवियों ने नवीन छन्दों का प्रयोग किया है। इन्होंने लक्षणा और व्यंजना शक्तियों से समन्वित नवीन भाषा और

प्रतीक और संकेत पद्धति वाली अभिव्यंजना प्रणाली का सहारा लिया है। इन्होंने वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति की है। इन्होंने अधिकतर अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। अलंकारों की योजना अधिकतर गुण साम्य या भाव साम्य के आधार पर हुई है, रूप साम्य के आधार पर नहीं। सादृश्यमूलक और विरोधमूलक अलंकार का प्रयोग भी हुआ है। सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति, अन्योक्ति, दृष्टान्त का प्रयोग हुआ है तथा विरोधमूलक में विरोधाभास। ''छायावादी कवियों ने अपने अनुभूतियोंके अनुरूप रूप निधि का निर्माण करते समय 'रूप' की संगति और सार्थकता के साथ–साथ उसके अतिरिक्त संकेत पर भी ध्यान रखा है। इसलिए छायावाद की रूप योजना में एक ओर जहॉ सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों के व्यंजक चित्र मिलते हैं, वहॉ दूसरी ओर प्रतीक योजना भी काफी मिलती हैं।''[46]

छायावादी कविताओं का पद विन्यास श्रुतिमाधुर्य वाले शब्दों से युक्त हैं। इन्होंने भावों के अनुकूल छन्दों का प्रयोग किया है। इनकी कविताओं में पदलालित्य, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, संगीतात्मकता, चित्रात्मकता व विषयानुरूप शब्दावली का चयन मिलता है। इन्होंने सांकेतिक अभिरुचि के लिए लाक्षणिक भाषा का प्रयोग किया है। इनकी कविताओं में गीत–प्रगीतों की रचना मुक्त रूप में हुआ है। इन्होंने विशेषण विपर्यय का प्रयोग भी किया है। इनकी कविताओं में मुक्तक छन्द का प्रयोग हुआ है।

छायावाद के प्रमुख कवि और उनकी कविताएं हैं – जयशंकर प्रसाद–'कामायनी', 'लहर', 'झरना', 'ऑसू',सूर्यकांत त्रिपाठी निराला–'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास',सुमित्रानंदन पंत–'उच्छ्वास', 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव', 'गुंजन', 'ज्योत्सना',महादेवी वर्मा–'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्यगीत', 'यामा', 'दीपशिखा',रामकुमार वर्मा–'अंजलि', 'अभिशाप', 'रूप राशि', 'चित्ररेखा',जानकीवल्लभ शास्त्री–'रूप अरूप', 'तीर तरंग', 'शिप्रा', 'मेघगीत'।

सन् 1936 में छायावाद का अन्त माना जाता है। इसके पश्चात् राष्ट्रीय चेतना युक्त कविताएँ रची गईं जिसका प्रमुख विषय देशभक्ति था। इसके साथ–साथ हालावाद नामक काव्यधारा भी चल रही थी जिसके प्रमुख कवि हरिवंशराय बच्चन थे। इस काल के प्रमुख कवि और कविताएँ हैं – पं माखनलाल चतुर्वेदी–'त्रिधारा', सियारामशरण गुप्त–'मौर्यविजय', 'दूर्वादल', 'विषाद', 'आर्द्रा', 'पाथेय', 'मृण्मयी', बालकृष्ण शर्मा नवीन–'कुंकुम', सुभद्राकुमारी चौहान–'मुकुल', हरिवंशराय बच्चन– 'तेरा हार', 'एकांत संगीत', 'मधुशाला', 'मधुकलश', 'मधुबाला', 'निशानिमंत्रण', रामधारीसिंह दिनकर–'प्रणभंग', 'रेणुका', 'हुंकार', ठाकुर गुरुभक्त सिंह–'नूरजहॉ', 'कुसुमकुंज', 'वंशध्वनि', पं उदयशंकर भट्ट–'तक्षशिला', 'मानसी', 'विसर्जन'।

3.4.4.प्रगतिवाद : रूसी क्रांति के बाद साम्यवाद की प्रतिष्ठा, भगत सिंह की फॉसी, 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना आदि ऐतिहासिक घटनाओं ने हिन्दी काव्य क्षेत्र में परिवर्तन की एक नई लहर उत्पन्न की। छायावादी कविता उस समय के सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति देने में

अक्षम थी। अंग्रेज़ों की शोषण प्रक्रिया, देश की साधारण जनता खासकर मज़दूरों और किसानों की दारुण अवस्था, राष्ट्रीय आन्दोलन, आम आदमी का संघर्ष और उसमें उभर रहे क्रांति की भावना, इन सभी का चित्रण छायावादी कविता नहीं कर पा रही थी। वह ऐसी परिस्थिति में भी कल्पना लोक में विचरण कर रहा था। इसके फलस्वरूप छायावादी काव्य परंपरा के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवादी काव्य परंपरा का जन्म होता है।''प्रगतिवाद केवल सामाजिक यथार्थ की विचारधारा के रूप में ही नहीं आया, उसमें स्वच्छन्दतावादी और अध्यात्मिक छायावादी कविता की भाषा, छन्द विधान, और अभिव्यंजना पद्धति के विरुद्ध एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया का भाव भी वर्तमान था।''[47] प्रगतिवादी कविताओं में संपूर्ण मानव जाति को संबोधन किया जाता है। इसमें यथार्थवादी एवं मानवतावादी स्वर है। इसकी भाषा सीधी और सपाट है तथा सामाजिक यथार्थ का चित्रण उसका मुख्य घटक है। प्रगतिवादी कविताओं के मूल तत्व–द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, मार्क्सवाद और राष्ट्रीय भावना है। ''प्रगतिवाद की मूल स्थापनाओं में सामाजिक यथार्थवादिता, सामयिकता एवं ऐतिहासिकता पर विशेष बल है जो मार्क्सवादी चिंतन का द्योतन करता है।''[48]

प्रगतिवादी काव्य में विदेशी लेखक व आलोचक जैसे मक्सिम गोर्की, लूसुन, मॉयकॉव्स्की आदि का प्रभाव है। प्रगतिवादी कविताओं में कृषिजीवि देहाती अंचलों के राग–रंग, श्रम और शोषण का चित्रण हुआ है। प्रगतिवादी कवियों ने तत्कालीन जीवन के यथार्थ में निहित विडम्बना को व्यंग्यात्मकता प्रदान किया है। इसमें वर्ग संघर्ष का चित्रण हुआ है। इन कविताओं में एंगेल्स–लेनिन द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक एवं

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव पड़ा है। इन कविताओं ने यथार्थ के भीतर निहित सकारात्मक और विकासशील तत्वों की पहचान की है। प्रगतिवादी काव्य परंपरा के प्रमुख कवि हैं– केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, रांघेय राघव, शिवमंगल सिंह 'सुमन', त्रिलोचन, मुक्तिबोध, भारतभूषण अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'।

यह परिवर्तनशील में आस्था एवं विश्वास रखने वाली कविताएं हैं। इसका रुख विकासोन्मुख है। यह मानवीय शक्ति को सर्वोच्च वरीयता देता है। इन कवियों ने जनसाधारण की भाषा को अपनी कविता सर्जना के लिए अपनाया है। प्रगतिवादी कविताओं का मूल उद्देश्य हैं–शोषित एवं पीड़ित के प्रति संवेदनशील होना, रूढ़ियों के प्रति विद्रोही स्वर अपनाना, नारी मुक्ति की कामना, समसामायिक समस्याओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना, वर्ग संघर्ष के प्रति आग्रह, पूँजीपति व्यवस्था के प्रति रोष एवं आक्रोश पैदा करना, श्रमजीवी को क्रांति के लिए उत्साहित एवं प्रोत्साहित करना, समाजोत्थान की भावना, समाज में साम्यस्थापना, धन–धरती बॉटने पर आग्रह, फांसीवाद का विरोध, धर्म का विरोध, समाज में आर्थिक संतुलन लाने की ललक आदि।

प्रगतिवाद के संबंध में श्यामचन्द्र कपूर का मत है – ''आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रगतिवादी कविता का जन्म छायावादी कविता की अतिशय अलंकृत, कल्पना प्रधान, अध्यात्ममूल एवं रहस्यवादी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के रूप में है।''[49]प्रगति के संबंध में मार्क्सवादी धारणा ही मुख्यतः हिन्दी की प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि है। मार्क्सवाद

को राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में समाजवाद और साम्यवाद, दर्शन के क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और समाजशास्त्र तथा इतिहास के क्षेत्र में ऐतिहासिक वस्तुवाद कहा जाता है। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद–''वह काव्यधारा है जिसने भारतीय समाज की आर्थिक–धार्मिक, राजनीतिक परिस्थितियों से रस ग्रहण कर, मार्क्सवादी विचारधारा का सम्बल प्राप्त कर, जिस मुक्त ढंग से अतिशय वैयक्तिकता से मुख मोड़ यथार्थ चित्रण किया वह 'प्रगतिवाद' के नाम से जाना जाता है।''[50]

प्रगतिवादी कवि साहित्य में कला को मात्र अभिव्यक्ति का साधन मात्र मानता है। यह व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व देता है। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाता है। अर्थ पर बल एवं उसके सामाजिक विभाजन पर ज़ोर देता है। इसका आधार भौतिकवाद है, इसका ईश्वर, आत्मा आदि से कोई संबंध नहीं है। पूँजीवादी साम्राज्यवाद का अन्त कर समाजवाद की स्थापना उसका एकमात्र लक्ष्य है। यह पूंजीवादी तत्वों द्वारा निर्मित समस्त नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक परंपराओं को ध्वस्त करना चाहता है। यह जीवन के केन्द्र में मानव को प्रतिष्ठित करता है।यह जनता में राजनीतिक चेतना का विकास कर, नये साम्यवादी समाज के स्वरूप, उद्देश्य और अनिवार्यता के प्रति जागरूक कराना चाहता है। जनसाधारण की मानसिकता को विकसित करना तथा वर्गहीन, शोषणहीन समाज की संरचना के लिए जनवादी आंदोलनों और वर्ग–संघर्ष के लिए जनता को उत्प्रेरित करना इसका उद्देश्य है।

3.4.4.1 **प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्तियॉ**

3.4.4.1.1. **सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि :** प्रगतिवादी कवियों ने किसानों और मज़दूरों के जीवन संघर्ष को बड़े नज़दीक से देखा है और उसकी अभिव्यक्ति की है।''घुन खाए शहतीरों पर की, बारह खड़ी विधाता बॉचे,/फटी भीत है, छत चूती है, आले पर विसतुइया नाचे,/बरसा कर बेबस बच्चों पर, मिनट–मिनट में पॉच तमाचे,/इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के सॉचे।''[51]–नागार्जुन

.3.4.4.1.2. **वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति असंतोष :** प्रगतिशील कवियों ने सामाजिक व्यवस्था के प्रति असंतोष को व्यंग्य एवं रोष के रूप में अभिव्यक्ति दी है। प्रतिक्रियाहीनता, धर्मान्धता, रूढ़ परंपराओं के विरुद्ध आवाज़ उठाकर इन कवियों ने आम जनता को विशेषकर देहाती जनता को शोषण के विरुद्ध खड़ा होने का आह्वान किया है।''हे ग्राम देवता, यथा नाम/शिक्षक हो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें सविनय प्रणाम।/विजया, महुआ, ताड़ी, गांजा पी सुबह–शाम,/तुम समाधिस्थ नित रहो, तुम्हें जग से न काम।''[52]– पंत

इन कवियों ने समाज में व्याप्त रंग भेद, वर्ग भेद, जन्म भेद जैसे अलगाववादी व्यवस्था को कोसते हुए कहा है–''जीवन भर श्रम करता कोई,/नहीं पेट भर खा पाता,/और आलसी वर्ग मज़े में,/अधिकारों का निर्माता।''[53]– केदारनाथअग्रवाल

3.4.4.1.3. **शोषक–शोषित वर्ग विभाजन :** असमानता अर्थव्यवस्था का परिणाम है। धन कुछ हाथों में इकट्ठा होना, किसानों और मज़दूरों को उचित परिश्रम न मिलना। पूँजीपति द्वारा उत्पादन के साधनों पर

अधिकार जमाना। इन सब के विरुद्ध कवियों ने अपनी आवाज़ उठाई है।''यह राज काज जो सधा हुआ है, उन भूखे कंगालों पर,/इन साम्राज्यों की नींव पड़ी है, तिल–तिल मिटने वालों पर।''[54]– भगवतीचरण वर्मा

3.4.4.1.4. **शोषित जनता की करुण दशा का चित्रण :** कृषकों व मज़दूरों का कठिन एंव श्रमरत जीवन का चित्रण इन कवियों ने किया है। रूढ़ सामाजिक परंपरा का चित्रण करते हुए शोषित वर्ग को उनके अधिकर के प्रति सजग करना, उन्हें शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने की मांग इन कवियों ने की है।

3.4.4.1.5. **राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम की भावना :** प्रगतिवादी काव्यों में न सिर्फ शोषक–शोषित के वर्ग संघर्ष का चित्रण हुआ है बल्कि उसमें राष्ट्रीयता एवं विश्व मानवता का भाव भी देखने को मिलता है। गांधी जी की हत्या पर क्षुब्ध नागार्जुन कहते हैं – ''जिस बर्बर ने/कल तुम्हारा खून किया/वह नहीं मराठा हिन्दू है/वह प्रहरी है स्थिर स्वार्थों का/वह मानवता का महाशत्रु/हम समझ गए/जो कहते हैं उसको पागल/वह नहीं चाहते परम क्षुब्ध जनता घर से बाहर निकले।''[55]

3.4.4.1.6.**स्वस्थ प्रेमाभिव्यक्ति के दर्शन :** इन कविताओं में स्वस्थ सामाजिक – पारिवारिक प्रेम व्यक्त हुआ है। जहॉ स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण होना है वहॉ भी संयमी एवं स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचय दिया है। इनका प्रेम सामाजिकता है।''कभी कभी यों हो जाता है/गीत कहीं कोई गाता है,/गूॅज किसी उर में उठती है/तुमने वही धरा उमगा दी।''[56]– त्रिलोचन

3.4.4.1.7. **नवजागरण एवं विद्रोह की भावना :** शोषक के विरुद्ध विद्रोह का आह्वान इन कवियों ने किया है। वर्तमान आर्थिक व्यवस्था को ध्वस्त कर, एक नयी व्यवस्था को लाने का आह्वान किया है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कविता 'विप्लव गायन' में वह कहते हैं –''नियम और उपनियमों के ये बंधन टूक टूक हो जाए,/विश्वम्भर पोषक वीणा के सब तार–तार मूक हो जाएं,/शांति दण्ड टूटे उस महारुद्र का सिंहासन हिल थर्राए,/उसकी पोषक श्वासोच्छ्वास जग के प्रांगण में घहराए।''[57]

3.4.4.1.8. **वर्गहीन समाज की स्थापना के पक्षधर :** प्रगतिवादी कवि धर्म, जाति, वर्ण, वर्ग आदि बंधनों से मानव को मुक्त कर समाज में समानता लाना चाहिता है। अमीर–गरीब की गहरी खाई को पाटना चाहता है।

3.4.4.1.9. **नारी के प्रति नया दृष्टिकोण :** इन कवियों ने नारी शक्ति और महत्ता का वर्णन किया है। उन्होंने युग युग से शोषित एवं दमित नारी को उत्थान का संदेश दिया है। नारी के विविध रूपों का चित्रण किया है। इन कवियों ने उसके कर्मठ व संघर्षमय जीवन में सौन्दर्य का दर्शन किया है।

3.4.4.1.10. **मानव की शक्ति में विश्वास :** इन कवियों को ईश्वर से अधिक मानव की शक्ति पर विश्वास है। मानव अपनी शक्ति और साहस के बल पर व श्रम से कुछ भी हासिल कर सकता है।

3.4.4.1.11. **धर्म, भाग्य एवं ईश्वर के प्रति अनास्था :** प्रगतिवादी कवियों ने धर्म–भाग्य–ईश्वर को पूंजीपतियों द्वारा अपनाए जाने वाले हथकण्डों में सहयोगी माना है।

3.4.4.1.12. **सोवियत रूस और साम्यवादी शासन व्यवस्था का समर्थन :** इन कवियों ने रूस और उसकी शासन व्यवस्था का गुणगान किया है। यह कवि रूस और चीन की क्रांति की सफलता से प्रभावित हैं। ''साम्यवादी चेतना, वर्ग संघर्ष, वर्ग चेतना से पूर्ण रचनाओं में लेखक कलाकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय घटना–चक्रों का प्रभाव तथा उनकी जागरूक दृष्टि का परिचय मिलता है।''[58]

3.4.4.1.13. **अनाचार, भ्रष्टाचार के विरोध में विद्रोह व शक्ति प्रयोग का समर्थन :** इन कवियों ने शोषक वर्ग को समाप्त करने के लिए हिंसा व बल के प्रयोग को सही बताया है। पूँजीपतियों, फांसीवादी ताकतों से अधिकार छीनने का आग्रह किया है। ''पूँजीवाद और सामंतवाद पर जागरूक तथा मार्क्सवादी चेतना से लैसकवियों की रचनाओं में गहरा व्यंग्य और प्रहार होने लगा था। अतः वर्ग चेतना के कारण शोषक–शोषित की नीति–रीति का खुलकर विरोध और पर्दाफाश करना इन रचनाओं का मुख्य उद्देश्य था।''[59]

3.4.4.1.14.**भाषा एवं शिल्प :** इनकी भाषा में नवीनता है। यह कला समाज के लिए का समर्थक हैं। जीवन के सुख–दुख, आशा–निराशा एवं आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का रुख व्यक्ति से समाज और समाज से विश्व की ओर है। प्रगतिवादी काव्य में अलंकारों की कमी को प्रतीकों द्वारा दूर किया है। बिम्ब विधान प्रगतिवादी काव्य का प्राण है। बिम्ब सौन्दर्यात्मकता से दूर सामान्य जन जीवन की उपज है। व्यंग्य का प्रयोग बहुत किया है। इन्होंने मुक्त छन्दों में काव्य रचना की है। इन्होंने गीत की भी रचना की है।

इन्होंने वस्तुगत यथार्थ का वैज्ञानिक दृष्टि से यथातथ्य चित्रण किया है। इन्होंने वैज्ञानिक विचारधारा के द्वारा सामाजिक जीवन के विश्लेषण की प्रवृत्ति जो मार्क्सवादी विचारधारा से प्राप्त हुई है, का प्रयोग किया है। इन्होंने विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। प्रगतिवादी कवियों ने व्यंग्य–विद्रूप शैली का विकास किया है। इन्होंने अपनी कविता में लोक गीतों, लोक धुनों और लोक भाषा के तत्वों को अपनाया है। लोक धुनों में सोहर, कजरी, चैता, ठुमरी आदि का प्रयोग तथा बोलियों में भोजपुरी, मैथिली आदि का प्रयोग किया है। इन्होंने प्रकृति और मनुष्य के जीवंत संदर्भों से प्रतीक तथा बिम्बों को उठाया है। ''इसके बिम्ब ग्राम जीवन, नगर जीवन, प्राकृतिक परिवेश तथा श्रम जीवि वर्ग की श्रम साधना के विभिन्न क्रिया–कलापों से उठाये गए हैं।''[60]

प्रगतिवादी काव्य धारा के कुछ प्रमुख कवि और कविताएँ हैं – भवानीप्रसाद मिश्र–'गॉव, सन्नाटा और सतपुड़ा के जंगल', केदारनाथ अग्रवाल–'युग की गंगा', 'लोक और आलोक', नरेन्द्र शर्मा–'कदली बन', 'प्यासा निर्झर', 'युग और मैं',शिवमंगल सिंह 'सुमन'–'जीवन के गान', 'हिल्लोल', नागार्जुन–'युगधारा', प्यासी पत्थराई ऑखें', 'खून और शोले', डॉ. रामविलास शर्मा–'रूप तरंग', डॉ. रांघेय राघव–'अखण्ड भारत', 'पिघलते पत्थर', 'राह के दीपक', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'– 'विप्लव गायन'।

3.4.5.**प्रयोगवाद :** प्रयोगवाद का आरम्भ सन् 1943 में प्रकाशित 'तार सप्तक' से माना जाता है। यह सामाजिक,दार्शनिक, भाषायी एवं शैलीगत धरातल पर चरम व्यक्तिवाद का विद्रोह है। इन कविताअें में मध्यवर्गीय

समुदाय के दुर्बलताओं का वास्तविक उद्‌घाटन है। तार सप्तक के संपादक कवि व आलोचक अज्ञेय इसकी भूमिका में कहते हैं कि –''प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किए हैं। यद्यपि किसी काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है, किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी छुआ नहीं गया, या अभेद्य मान लिया गया है।''[61] प्रयोगवादी कविताएँ ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्रण हैं। इनमें मध्यवर्गीय दीनता, हीनता, अनास्था, पलायन आदिकाबड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। इसमें मध्यवर्गीय समुदाय के दुर्बलताओं का चित्रण है। इसमें बौद्धिक विवेचन, विश्लेषण और खण्डन–मण्डन की प्रवृत्ति है। इसने समस्त मान्य धारणाओं और परंपराओं को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति है। इसमें उलझी हुई मानव संवेदना का चित्रण हुआ हैं। इन कविताओं में व्यक्तिनिष्ठ, अहंवादी, स्वतंत्रचेता, बौद्धिक, तर्कशक्ति में विश्वास रखने वाले मानव का चित्रण हुआ है। ''प्रयोगवादी कविता में व्यक्तित्व की निविडताओं को वैज्ञानिक प्रतीकों द्वारा वस्तुगत रूप में अंकित करने का प्रयत्न रहता है और एक ऐसी बौद्धिक स्थिति उत्पन्न हो जाती है जहॉ वस्तुपरक और व्यक्तिपरक दृष्टिकोण प्रतिद्वन्द्वी न रहकर साधक साध्य बन जाते हैं।''[62] प्रयोगवादी कविताओं में व्यक्ति की अंतस में स्थित व्यक्तिवादी भावचेतना की अभिव्यक्ति हुई है। इसके प्रमुख कवि हैं–अज्ञेय, हरिनारायण व्यास, नेमीचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा आदि।

प्रयोगवादी कविताओं में विषयगत नवीनता देखी जा सकती है। इन्होंने शिल्पविधान एवं रचना कौशल पर अधिक बल दिया है। इन्होंने नएउपमानों, बिम्बों, प्रतीकों एंव छन्द विधानों का प्रयोग किया है। प्रयोगवादी कवियों व कविताओं पर टी एस इलियट, इज़रा पाउण्ड, सार्त्र, एडलर, फ्रायड व युंग जैसे रचनाकारों व विचारकों का प्रभाव देखा जा सकता है। प्रगतिवादी कविताओं की घोर सामाजिकता व नारेबाज़ी की प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्ति की आंतरिक चेतना में विद्यमान संघर्ष, संत्रास, संदेह आदि भावों की अभिव्यक्ति प्रयोगवादी कविताओं में हुई है।इन काव्यों में मुख्य रूप से व्यक्ति की अनुभूति, क्षण की महत्ता, अनिश्चितता की स्थिति, अस्तित्ववादी दर्शन, बौद्धिकता व वैज्ञानिकता एवं जटिलतम संवेदना मौजूद है। इसमें –''जीवन के लघुतम क्षणानुभूति के प्रति विशिष्ट चिंतन भावना एवं बौद्धिक धरातल पर हृदय स्पर्शी भावाभिव्यक्ति है। अतः प्रयोगवाद मानवीय मूल्यों की उत्सर्गता का एक सरल प्रयास है जिसका प्रवाह व्यक्ति अनुभूति से समाष्टि अनुभूति की ओर है।''[63]

3.4.5.1 **प्रयोगवादी काव्य की प्रवृत्तियॉ**

3.4.5.1.1.**अहंवाद :** इनमें व्यक्ति की प्रधानता है। समाज यहॉ गौण है। व्यक्ति के दुख दर्द के समक्ष समाज का कोई महत्व नहीं है। यह व्यक्तित्व विघटन के प्रति अत्याधिक सचेत हैं। मानवीय मूल्यों के विघटन से होने वाले व्यक्तित्व खण्डन को बचाने हेतु उसका अहं उग्रता से जागृत हो जाता है। ''उसकी दीपवत स्थिति शीलता, अस्तित्व संकट बोध, शिथिल होती नियतिवादिता के प्रति व्यक्तिगत एवं सामाजिक

चेतना, व्यावहार के बीच के संघर्ष में वह अपने अस्तित्व बोध को पहचानता हैं।''[64]

3.4.5.1.2. **बौद्धिकता :** इन कविताओं में बुद्धि व हृदय का तारतम्य स्थापित किया जाता है। इसमें वैज्ञानिक तरीके से अपनी मनोभावों की अभिव्यक्ति हुई है।

3.4.5.1.3. **जटिल संवेदनाएँ :** आंतरिक एवं बाह्य संघर्ष के बीच फसा आदमी का चित्रण हुआ है। आदमी के भीतर की दमित एवं कुंठित यौन परिकल्पनाओं का चित्रण हुआ है। उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रांत है। ''प्रयोगवादी कवियों ने अपने मानसिक व्यक्तित्व की चेतना को सामाजिक विसंगतियुक्त धरातल पर विखंडित होते पाया है, इसीलिए प्रयोगवादी कवियों के वैयक्तिक और सार्वजनिक के मध्य के संवेदनातमक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति हुई है।''[65]कवि आंतरिक तथा बाह्य संघर्ष के बीच उलझी जटिल संवेदनाओं के बीच से अस्तित्व बोध को समझने के लिए बुद्धिपरक तार्किकता का सहारा लेता है।

3.4.5.1.4.**मानवतावादी दृष्टिकोण :** मार्क्सवाद का प्रभाव भी प्रयोगवादी कवियों में होने के कारण उनकी कविताओं में विश्वबन्धुत्व भाव विद्यमान है। वे संघर्ष में वैयक्तिक दुख–दर्दों के लोक से ऊपर उठकर सार्वजनिक पीड़ा बोध की भी अभिव्यक्ति करते हैं।

3.4.5.1.5.**पीड़ा बोध :** सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक वैषम्य के कारण मानव मन, कुंठा, चिंता, निराशा व अवसाद से भर गया है। व्यक्ति विघटन की गहरी पीड़ानुभूति के कारण नष्ट हो रहे जीवन मूल्य ने प्रयोगवादी कवि को व्यथित कर दिया है।

3.4.5.1.6. **ह्रासोन्मुख मध्यवर्ग का चित्रणः** नैराश्य एवं अकेलेपन की भावना से ग्रसित मध्यवर्ग का चित्रण इन कवियों ने किया है। विघटित मूल्यों से ग्रसित मध्यवर्गीय मानसिकता का चित्रण इनकी कविताओं में प्रभवशाली ढंग से हुआ।

3.4.5.1.7.**नगर बोध और नगर सभ्यता का चित्रण :** नगर जीवन की खोखली चमक–दमक, मूल्यहीनता, यांत्रिकता आदि का चित्रण प्रयोगवादी कवियों ने किया है। ''नगरीय जीवन में एक ओर जहॉ घुटन, बौनापन, अकेलापन आदि महसूस होता है, वहीं दूसरी ओर उसकी चमक–दमक, विकास–प्रकाश से प्रभावित हुए बिना भी कवि नहीं रह पाता है।''[66]स्वार्थ एवं अकेलेपन से युक्त महानगरीय जीवन में कवि पूँजीवादी खोखलेपन और प्रचारपरकता के प्रतीक बड़े–बड़े पोस्टरों के सामने अपने को बौना महसूस करता है।

3.4.5.1.8. **सौन्दर्य एवं प्रेम :** प्रयोगवादी कवि यद्यपि विसंगतिपूर्ण जीवन की कुंठा एवं पीड़ा का वर्णन किया है, साथ ही जीवन से जुड़े अभिन्न तत्व सौन्दर्य एवं प्रेम के प्रति पूरी आस्था प्रकट की है।

3.4.5.1.9.**भाषा एवं शिल्प :** भाषा अधिक व्यावहारिक एवं कृत्रिम है। मुक्त छन्द का प्रयोग किया गया है। शहरी परिवेश के होते हुए भी इनमें गॉव के शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

3.4.6. **नई कविताः**सन् 1952 में यह काव्यान्दोलन का आरम्भ होता है। इसे नयी कविता नाम पहली बार रचनाकार जगदीश गुप्त अपनी पत्रिका नये पत्ते में लिखे लेख से प्राप्त होता हैं। पाश्चात्य साहित्य के काव्य क्षेत्र में 'न्यू पॉयट्री' नाम से आए आन्दोलन का इस पर गहरा प्रभाव पड़ा

है। नयी कविता का नामांकन अपने पूर्ववर्ती काव्यान्दोलन के प्रतिक्रिया के रूप में न होकर, एक व्यापक काव्यान्दोलन की रचनात्मक उपलब्धि के कारण होता है। नयी कविता में मानवीय चेतना की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम रूप है। यह काव्य की उदात्तीकरण के स्थान पर उसके भावों में घनत्व एवं तीव्रता लाना चाहता है। सुमित्रानन्दन पंत का कहना है –''नयी कविता ने मानव भावना को छायावादी सौन्दर्य के धड़कते हुए पालने से बलपूर्वक उठाकर उसे जीवन समुद्र की उत्ताल तरंगों में पेंग भरने को छोड़ दिया है, जहॉ वह साहस के साथ सुख–दुख, आशा–निराशा के घात–प्रतिघातों में बढ़ती हुई जग जीवन के ऑधी–तूफानों का सामना कर सके, अन्तर्वेदना से मुक्त होकर सामाजिक व्यथा के अनुभवों से परिपक्व बन सके।''[67]

नए कवि हर परंपरागत विषय और चेतना, मान्यता और प्रत्यय को एक नए वैज्ञानिक चिंतन पर आधारित मानदण्डों पर तौलकर ही स्वीकार करता है। भारत की स्वाधीनता से पूर्व जो सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन के सपने थे, वह धीरे–धीरे बिखरने लगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारत की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में कोई ठोस बदलाव नहीं आ पाया जिससे जनता में मोह भंग की स्थिति उत्पन्न होने लगी। ''नयी कविता में यह मोहभंग नये जीवन यथार्थ को स्वीकार करने और विरूप स्थितियों की यातना को अंगीकार करते हुए आदर्शवाद और भाववाद पर तीखा प्रहार है।''[68] नयी कविता अनुभूति की सच्चाई और यथार्थ बोध पर अधिक बल देता है। ग्राम्य एवं नगर जीवन दोनों का प्रस्तुतीकरण नई कविता में हुआ है। इसने अति बौद्धिकता के स्थान पर सहज संवेदनशील हृदय के आधार पर मानव की मर्मस्पर्शी भावनाओं एवं रागात्मक पक्ष को

महत्ता दी है। नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर लक्ष्मीकांत वर्मा कहते हैं कि –''आज की नई कविता भी परंपरा और रीति के विरोध में जीवन सत्य के उन आयामों और धरातलों को छूती है, जो नित्यप्रिय जीवन में आत्म अनुभूति के आधार पर व्यक्त होते हैं। नई कविता के नएपन में यही ऐतिहासिक, वैयक्तिक, सामाजिक और आत्मव्यंजक सत्य वे आयाम और धरातल विकसित करते हैं, जो परंपरा से भिन्न होते हुए भी सार्थक एवं समर्थ रूप में नयी अभिव्यंजना को अवतरित करते हैं।''[69]नई कविता की मुख्य विषयवस्तु हैं– समसामयिक राजनीति, व्यक्ति की संश्लिष्ट एवं जटिल जीवन समस्याएं, प्रकृति के प्रति तटस्थ रागात्मक दृष्टिकोण, प्रेम और काम संबंधी भावनाओं में यथार्थवादी रुझान, जीवन और मृत्यु संबंधी चिंतन आदि। नयी कविता में आंतरिक द्वन्द्व, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, वर्तमान यांत्रिक सभ्यता की विसंगतियों के प्रति आक्रोश, व्यक्ति स्वातंत्र्य के प्रति आग्रह और नवीन जीवन मूल्यों की उपलब्धि के प्रति अकुलाहट की अभिव्यक्ति विद्यमान है। नया कवि आधुनिकता द्वारा स्थापित किसी भी सार्थक मूल्य को अपने परिवेश में जीवंत न पाकर उसके प्रति उदासीन है। वह मूल्यों की स्थापना नहीं, मूल्यों के नाम पर प्रतिष्ठित खोखली आस्थाओं और आदर्शों की विसंगतियों को उद्‌घाटित करता है।नयी कविता के प्रमुख कवि एवं काव्य हैं–लक्ष्मीकांत वर्मा–'आदमी का ज़हर', 'खाली कुर्सी की आत्मा',सर्वेश्वर दयाल सक्सेना –'काठ की घंटियॉ', 'बॉस का पुल', 'एक सूनी नाव',श्रीकांत वर्मा–'माया दर्पण', 'भटका मेघ', 'दिनारम्भ',नरेश मेहता–'संशय की एक रात', 'मेरा समर्पित एकांत', 'महाप्रस्थान',धर्मवीर भारती–'सातगीत वर्ष', ठण्डा लोहा', 'कनुप्रिया,रघुवीर सहाय–'आत्महत्या के विरुद्ध', 'सीढ़ियों पर धूप

में',मुक्तिबोध–चॉद का मुह टेढ़ा है', 'लकड़ी का रावण',भवानी प्रसाद मिश्र–'गीत फरोश', 'बुनी हुई रस्सी',कुंवर नारायण –'चक्रव्यूह', 'आत्मजयी', 'परिवेश : हम तुम',कीर्ति चौधरी –'खुले आसमान के नीचे', 'निस्तब्ध आधी रात'।

3.4.6.1. **नयी कविता की प्रवृत्तियॉ**

.3.4.6.1.1. **टूटन और यंत्रणा :** नयी कविता में अस्थिर एवं संशयग्रस्त मानव का चित्रण हुआ है। इसमें मानव जीवन की अर्थहीनता तथा दिशाहीनता को दिखाया है। ''नयी कविता में दिशाहीन मानव की अर्थहीन जिन्दगी में पूंजीवादी अर्थ तंत्र के दबाव के फलस्वरूप उभरती हुई टूटन और यंत्रणा का लगातार चित्रण हुआ है।''[70]

3.4.6.1.2. **यांत्रिकता, अमानवीयता, अकेलापन :** अस्पताल में बिस्तर पर पड़े बीमार की दृष्टि से वह जिन्दगी को देखने लगा है। सिर पर घूमते हुए बिजली के पंखे की यांत्रिक गति के साथ वह अपने जीवन की तुलना करता है। अपने जीवन के अकेलेपन और अवसाद को कही अधिक गहराई से देखता है। सामाजिक मूल्यों के ह्रास से उत्पन्न मोहभंग की स्थिति से वह अकेलापन, संत्रास, मृत्युबोध, निराशा आदि से ग्रसित है। ''यथार्थवाद और जिए हुए सत्य का आग्रही साहित्यकार देख रहा था कि आधुनिकता ने मध्यकालीन रूढ़ धर्म–मूल्यों पर आघात कर जिन भौतिकवादी मूल्यों की स्थापना की थी, वे मूल्य, मूल्य न रहकर सुविधा संपन्न लोगों के भोग–विलास और शोषण के कवच बन गए हैं।''[71]

3.4.6.1.3.**अस्तित्व की पहचान और व्यक्तिवाद :** पूंजीवादी दबाव से कवि अपने अस्तित्व के चार दीवारी में बंधकर रह जाता है। अस्तित्व की

पहचान का एक अलग पहलू नयी कविता में हमें प्राप्त होता है। अस्तित्व की यह चेतना व्यक्तिवादी होते हुए भी जीवन की निरंतरता और विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण रखने की मानवीय संघर्षशीलता इसमें विद्यमान है। ''नयी कवता में व्यक्तिवाद का स्वरूप दोहरा है। एक तो वह जो अस्तित्ववाद की आत्मचेतना तथा अहंकेन्द्रियता से उद्‌भूत है और दूसरा पूंजीवादी, जनवाद विरोधी तथा सामूहिकता के विपर्यय के रूप में प्रस्तावित व्यक्ति चेतना के दर्शन से उत्पन्न हुआ है।''[72]

3.4.6.1.4. **लघुमानव :** लघुमानव की अवधारणा पश्चिम की देन है। यंत्र युग की विभीषिका के फलस्वरूप लघु मानव का जन्म होता है। रोबोट, कम्प्यूटर आदि का आविष्कार व एटम बम्ब व हाइड्रोजन बम्ब जैसे महाविनाशकारी अस्त्रों के निर्माण से इंसान के हृदय और कल्पना में लघुता और निरुपायता की भावना भर दी। लघु मानव का अर्थ है वह सामान्य मनुष्य जो अपनी सारी संवेदना, भूख प्यास और मानसिक ऑच को लिये–दिये उपेक्षित है। ''लघु मानव किसी दर्शन, संप्रदाय या राजनीतिक दल की दृष्टि से दिखाई पड़ने वाला मानव नहीं है, बल्कि कवि की सहज मानवीय संवेदना और आधुनिक यथार्थवादी दृष्टि से अपने सभी रूपों में दिखाई पड़ने वाला जीवित मनुष्य है जो किसी भी वर्ग का नहीं और उन सभी वर्गों का है जो जीवन के दर्दों के प्रति ईमानदार है।''[73]नया कवि लघुमानवता की संकल्पना अपने चारों ओर फैली सामाजिक समस्याओं से घिरे साधारण इंसान की अन्दर उत्पन्न पराजय एवं कुंठा की भावना से उत्पन्न होती है। अपने अस्तित्व की

पहचान को बनाए रखने के भरसक प्रयत्न ने नयी कवियों को लघु मानव की अपराजय अहं की ओर काव्य रचना करने की नयी दृष्टि दी।

3.4.6.1.5. **आधुनिक भावबोध :** विज्ञान के विकास के साथ–साथ नवीन विश्वबोध का निर्माण हुआ और जिससे क्रांतिकारी परिवर्तन समाज के हर तबके में आया। मगर इनके साथ–साथ परंपराओं का खण्डन, धार्मिक मान्यताओं पर प्रश्न चिह्न एवं इंसान की लघुता सामने आई जिससे आस्था–अनास्था, विश्वास–संशय, सामाजिकता–वैयक्तिकता के बीच आत्मसघर्ष पैदा हुआ। इन्हीं आत्मसंघर्षों से होकर नई कविता आत्माभिव्यक्ति करती है। ''समाज में मौजूद धर्म संप्रदायों और उनके बीच के संघर्षों, जातिगत दंगों, शोषक–शोषित का द्वन्द्व आदि से नए कवि हताशा एवं कुंठा की स्थिति में चला जाता है। ऐसे ही पतनोन्मुखी मानसिकता से साक्षात्कार करके सामाजिक उद्धार हेतु इनमें विद्यमान मिथ्या प्रपंचों का पर्दाफाश करता है।''[74]

3.4.6.1.6. **क्षण का महत्व** : जीवन का एक सुखद क्षण बाकि सारे जीवन से श्रेयस्कर है। क्षण में जीवन व्यापन करना और क्षण के सुख को अंगीकार कर लेना ही जीवन का सही उपयोग है।

3.4.6.1.7. **वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष :** मध्यवर्गीय विडम्बनाओं से पृथक इन कवियों ने अमीरी–गरीबी के बीच की खाई का चित्रण भी किया है। निम्न वर्ग के साथ खड़े होकर व उनके संघर्ष में भाग लेकर पूँजीवादी शक्तियों के खिलाफ इन कवियों ने आवाज़ उठाई है। ''शोषित जनता की सामाजिक दुरवस्था तथा आर्थिक विपन्नता के चित्रण के साथ–साथ

संघर्ष के लिए उनको उत्साहित करने और उनके छोटे बड़े संघर्षों को रेखांकित किया है।''[75]

3.4.6.1.8. **प्रकृति चित्रण :** नये कवि के लिए प्रकृति अलग से संवेद्य न होकर कवि की मूल संवेदना का अंग बन जाती है और उसको गहरा करती है। प्रकृति के दृश्य उपादानों को नया कवि न केवल रोमान के लिए बल्कि वर्ग चेतना के लिए भी इस्तेमाल करता है। नया कवि अपने व्यक्तिगत कुंठा, अकेलापन और टूटन को भी प्रकृति के सुदृश्यों में प्रतिबिम्बित करता दीखता है। ''आधुनिकाल की विसंगतियों से चेतन और अवचेतन में जो प्रभाव पड़ता है उसका चित्रण प्राकृतिक उपादानों के सहारे नए कवियों ने किया है।''[76]

3.4.6.1.9. **अनुभूति की प्रामाणिकता :** नये कवियों को जीवन की परिस्थिति से सीधा संबंध है। इसके साथ–साथ इनकी कविताओं में वस्तुओं की सत्ता से भी सीधा संबंध है। कवि मानता है कि मनोलोक की कोई सीमा नहीं होती और कोई भी बात कवि के चेतना में गहराई तक प्रविष्ट हो सकती है। इसलिए अनुभूतियॉ परंपरागत नहीं होतीं। इसलिए अनुभूति की सच्चाई में यह कवि विश्वास रखते हैं। वह सच्चाई को, अनुभूत तथ्य को बेहिचक कह देता है। यह कवि अनुभूत क्षण को सत्य मानते हैं।

3.4.6.1.10. **अहंवाद :** विघटनपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक परिस्थितियों के मध्य नये कवि ने अपनी रचना का प्रारम्भ किया। इसलिए उनमें टूटी मानसिकता व अपने विच्छृंखल व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की लालसा विद्यमान है। नयी कविता में ''मैं'' न सिर्फ कवि के

आत्माभिव्यक्ति को द्योतित करता है बल्कि वह पूरे समाज का भी प्रतिनिधित्व करता है। ''स्वयं को विसर्जित करते हुए भी कवि को अपनी महान वैयक्तिकता, अद्वितीयता और सामर्थ्य का ध्यान बना रहता है।''[77]

3.4.6.1.11. **अनास्था, निराशा एवं कुंठा की भावनाः** नये कवियों ने परंपराजन्य साहित्यिक मूल्यों का खण्डन किया है, साथ ही जीवन और समाज के प्रतिष्ठित मूल्यों को भी निरर्थक माना। प्रतिष्ठित मूल्यों के खण्डन के बाद फिर उसके सामने,इस विच्छृंखल समाज में निराश व कुंठा ही बचा होता है। ''सामाजिक स्वीकृतियों से अपूर्ण नये कवि में अकेलेपन की भावना उत्तेजना के क्षणों को दमित कर उसे निढाल और शिथिल बना देती है। ऐसी मनःस्थिति के मध्य जो भाव निःसृत होते हैं, उसमें आत्मलीनता, अनास्था, पराजय भाव, निराशा, वेदना, कुंठा, अनिश्चय है।''[78]

3.4.6.1.12. **समष्टिभाव का चित्रण :** नये कवियों ने न सिर्फ घोर व्यक्तिवादी कविताओं की रचना की है बल्कि समाज उत्थान की भी कविताएँ लिखी हैं। नये कवि की सामाजिकता व्यक्ति की वैयक्तिक अनुभूतियों से होकर गुज़रती है। ''जीवन के यथार्थ की प्रतिकूल अवस्था का प्रभाव नए कवियों के कविताओं में पाया जाता है और इसी के फलस्वरूप उनमें सामाजिकता का प्रतिपादन भी हुआ है।''[79]

3.4.6.1.13. **व्यंग्य :** नये कवियों ने अमंगलकारी सामाजिक एवं राजनीतिक प्रवृत्तियों पर कुठाराघात किया है। नयी कविता का युग मानवीय मूल्यों का सर्वाधिक विघटन का युग है। अपनी असफलता, वेदना, अभावग्रस्तता आदि के कारण वह त्रस्त है। इसी मानसिकता से ही व्यंग्य का उत्पन्न

हुआ है। ''पूँजीवादी व राजनीतिज्ञों का अभद्र खटबंधन, निम्न वर्ग की दारुण अवस्था, निम्न मध्यवर्ग की कभी न खत्म हो रही अभावग्रस्त जीवन, शहरी जीवन की कृत्रिमताओं और असफलताओं का भय एवं संत्रास आदि ने नए कवियों को व्यंग्यात्मक रचनाएँ लिखने की परिस्थिति उत्पन्न की।''[80]

3.4.6.1.14. **लोक संस्कृति एवं ग्रामीण जनजीवन :** नये कवियों ने ग्रामीण जीवन को अपने काव्यों में जीवंत करने के लिए लोक गीतों का सहारा लिया है। किसान के जीवन को अपने काव्य में प्रस्तुत कर देश की ग्रामीण परिवेश में व्याप्त अभावग्रस्त जीवन का चित्रण किया है। देश की संस्कृति की जननी होते हुए भी गॉव के परिवेश में फैलती निराशा, पलायनवादी भावना आदि का चित्रण कवि करता है। दूसरी ओर गॉव का सुन्दर चित्रण भी इन कविताओं में देखने को मिलता है। ''नयी कविता ने लोक जीवन की अनुभूति, सौन्दर्यबोध, प्रकृति और उसके प्रश्नों को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया है। साथ ही साथ लोक जीवन के बिम्बों, प्रतीकों, शब्दों और उपमानों को लोक जीवन के बीच से चुनकर उसने अपने को अत्यधिक संवेदनापूर्ण और सजीव बनाया है।''[81]

3.4.6.1.15.**पौराणिक संदर्भ :** यह संदर्भ आधुनिक मानव की संत्रासपूर्ण परिस्थिति को उजागर करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रों को लेकर उनमें आज के मानव की मानसिक विडम्बनाओं, संशयों, निराशाओं को प्रयुक्त किया है। पौराणिक पात्र नए कवियों की रचनाओं में अपने देवत्व और अलौकिक छवि को उतारकर साधारण मानव की तरह जीवन की समस्याओं से झूंझते हुए दिखाई

पड़ते हैं। इस तरह के रचनाओं में प्रमुख हैं– 'संशय की एक रात' (नरेश मेहता), 'कनुप्रिया', 'अन्धायुग' (धर्मवीर भारती), 'आत्मजयी' (कुंवर नारायण), 'एक कण्ठ विषपाई' (दुष्यंत कुमार) आदि।

3.4.6.1.16. **भाषा एवं शिल्प :** नयी कविता ने अपनी अलग शैली निर्माण न करते हुए भी आज की प्रचलित शब्दावली, छन्दोरचना और अभिव्यक्ति प्रणाली को आगे बढ़ाया है। इस दृष्टि से नई कविता ने राजनीति–प्रधान शब्दावली से कविता को मुक्त किया और उसको जीवन की शब्दावली से सजाया। नया कवि छन्द को संवारने की अपेक्षा वस्तु तत्व को व्यवस्थित करने, उसके रूप को उभारने और अनुभूति के मूल ढॉचे को सशक्त बनाने का विशेष प्रयत्न किया है। छन्द विधान में मुक्त या स्वच्छंद छन्द का प्रयोग हुआ है जिसमें अनियमित चरण एवं असमान गति पर विशेष बल है। पद्यात्मकता से गद्यत्मकता की ओर है। नाथ की लय से अर्थ की लय की ओर संचरण हुआ है। भाषा में नये प्रयोग हुए हैं। शब्द, पद, वाक्य, मुहावरे व लोकोक्तियों में नये अर्थ। सरल भाषा का प्रयोग हुआ है। तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी भाषा एवं बोलियों के शब्द ग्रहण किये हैं। ''नए शब्द जो अभी तक काव्य भाषा में स्थान नहीं बना सके थे, उनका नयी कविता में प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ तथा इसके साथ ही कुछ नए शब्दों को कवियों ने गढ़ भी लिया है।''[82] नयी कविता में प्रयुक्त प्रमुख बिम्ब, प्रतीक एवं अलंकार हैं –

3.4.6.1.16.1**बिम्ब :** वस्तु बिम्ब, भावात्मक बिम्ब, कलात्मक बिम्ब, प्राकृतिक बिम्ब, पौराणिक बिम्ब, वैज्ञानिक बिम्ब आदि का प्रयोग हुआ है।

3.4.6.1.16.2 **प्रतीक :** कलात्मक प्रतीक, प्राकृतिक प्रतीक, पौराणिक प्रतीक, ऐतिहासिक प्रतीक, वैज्ञानिक प्रतीक, यौन प्रतीक आदि का प्रयोग हुआ है।

3.4.6.1.16.3 **अलंकार :** अनुप्रास अलंकार, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकार आदि का प्रयोग हुआ है।

3.4.7.**साठोत्तरी कविता :** स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारतीय समाज में आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों के आधार पर कोई बदलाव नहीं आया। उच्च वर्ग अधिक लाभ में रहा और निम्न वर्ग की स्थिति बद्तर होती गई। विकास के नाम पर औद्योगीकरण और शहरीकरण के आगमन से देश की सामान्य जनता की जीवन परिस्थितियों में खास परिवर्तन नहीं आ पाया। साधारण जनता सत्ता एवं पूंजीवादी शक्तियों के शिकार बनते गए। उनका शोषण होता गया। विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन होता गया। जनता बेरोज़गारी, गरीबीपन, से त्रस्त हो गया। उसके परिणामस्वरूप एक ऐसी पीढ़ी का आविर्भाव हुआ जो मनुष्य, समाज, शासन, धर्म, परिवार, नैतिकता, नियम आदि को गंभीरता से लेने के लिए तैयार नहीं रहा बल्कि संपूर्ण व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाया। इसका प्रमुख कारण यहॉ की व्यवस्था है। एक ऐसी व्यवस्था जो जनता का निरंतर शोषण कर रही है। इसलिए साठोतरी कविता में निषेध का स्वर है। इसमें किसी भी संस्थान व व्यवस्था का खण्डन किया है। ''आज की कविता मेंअस्वीकृति की, निषेध की अनिवार्यत को सहज मानकर स्वीकार करती है। उसे किसी प्रकार का व्यामोह या अतीतोन्मुख वैभव अथवा रागात्मकता सेतीव्र घृणा है। आज का कवि रोमैंटिक वृत्ति का

विरोधी, परंपरा से मान्य काव्य रूढ़ियों को स्वाभावतः विघटन करने वाला और नए शब्दों का प्रस्तावक है।''[83]साठोत्तरी कवियों ने अतीत का घोर विरोध किया है। अतीत का अंधा मोह गलत है क्योंकि यह समकालीन परिस्थितियों से जनसाधारण को विच्छेद करती है। यह कवि रागात्मकता और रोमांटिक प्रवृत्ति का घोर विरोध करते हैं। परंपरा और अतीत के गौरव गान को कवि व्यर्थ बताते हैं।

इस काव्य आन्दोलन का मुख्य प्रेरणा स्रोत 1967 के नक्सलबाड़ी आन्दोलन है। 1962 की चीन से पराजय, योजनाओं के आधे–अधूरे नतीजे, मध्यवर्गीय विपन्नता, छात्र असंतोष, प्रांतों का विघटन, सूखा, भूखमरी, रुपये का अवमूल्यन, निम्न वर्ग का असंतोष, बेरोज़गारी, महंगाई, दलितों पर अत्याचार–शोषण, भ्रष्टाचार आदि कारणों से उस समय के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक क्षेत्र घोर संकट में था। इन सबके फलस्वरूप व्यवस्था विरोध और संघर्ष धर्मिता का स्वर तेज़ हुआ। ''कवियों ने महसूस किया था कि शासक वर्ग सत्ता में बने रहने के लिए तरह–तरह के हथकंडे अपना रहा है, चालें चल रहा है। शोषण के नीचे विशाल जनसमुदाय पिस रहा है। सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक साधनों पर, सत्ताधरियों का नियंत्रण है। जनसाधारण में चेतना नहीं है, वह दुश्मनों को पहचान नहीं पा रहा है। कवियों को अपनी मध्यवर्गीय कमज़ोरियों से भी जूझना है। कवियों के सामने दो काम थे – शोषकों को बेनकाब करना और जन को संगठित करना।''[84]

इस काल के प्रमुख काव्यान्दोलन हैं – अकविता, युवा कविता, भूखी पीढ़ी की कविता, सनातन सूर्योदयी कविता, बीट कविता आदि।

इनका मुख्य उद्देश्य अन्याय, शोषण, दमन आदि से जनसाधारण को अवगत कराना, उसका विरोध करना और सामाजिक कल्याण की स्थापना करना। साठोत्तरी कविता का विद्रोह दो स्तरों पर विद्यमान है–उस संपूर्ण ढॉचे के विरुद्ध जिस पर आज की स्थापित सत्ता और उच्चवर्गीय संस्कृति के खोखले मूल्य टंगे हुए हैं और उस कुचक्रपूर्ण दबाव के विरुद्ध जो उसे उस मृत ढॉचे के भीतर अपनी विलक्षण प्रतिभा को स्थापित करने से रोकता है।

परिवारिक एवं सामाजिक संबंध इन्हें निरर्थक लगते हैं। साठोत्तरी काव्य पीढी की बेचैनी में विवशता और कुछ न कर पाने का दर्द है। ''साठोत्तरी कविताओं में नकार की भावना अधिक है। एक आततायी जड़ता के भीतर हमारा नकार वस्तुतः एक बृहत्तर स्वीकृति की चेष्टा है। हम साहस के साथ खतरों के बीच स्थितियों को नकारते चल रहे हैं। फाजिज्म, व्यावसायिकता, पूॅजीवादी खतरों के प्रति हमारी पीढ़ी पूरी तरहसचेत है। नकार हमारी आंतरिक स्वतंत्रता का प्रमाण है।''[85]इन कवियों के अनुसार लोकतंत्र पूंजीवाद को विकास का अबाधित अवसर प्रदान करने वाली एक राजनीतिक आड़ हो गया है। इन कविताओं में संत्रास, विसंगति तथा खलनायकत्व का आभास सर्वत्र है, फिर भी उन्होंने अपने को समन्वित एवं संतुलित करने का सदैव प्रयास किया है। इन कवियों ने विसंगति, विघटन, संत्रास और अनास्था की ऐकांतिक अभिव्यक्ति को अपने काव्य का विषय चुना। उन्होंने यह सिद्ध किया कि इन स्थितियों ने जीवन को इस प्रकार जकड़ लिया है कि कहीं दूसरी तरफ देखने की गुंजाइश ही नहीं है। उनकी कविता अहं भावना से युक्त अनास्था और अनुत्तरदायित्व के बीच स्थित है।

इनमें भाषा की दुरूहता, भावभंगिमा की क्लिष्टता, नए बिम्ब, प्रतीक, फैंटसी का प्रयोग हुआ है। उनकी अनास्था में एक प्रकार की व्यक्तिगत तथा सामाजिक पीड़ा व दुख दर्द छिपा है। यह जीवन की विफलताओं, विडम्बनाओं, विसंगतियों और निराशा से ऊबी हुई एक पीढ़ी है। इस काव्यधारा के प्रमुख कवि श्याम परमार का कथन है– ''काव्य में चित्रकला की नव्य शैली अपनाने के आग्रही हैं। अधूरे वाक्य की करतनें, औद्धत्य, ऊलजलूल प्रसंगों, खण्डित फैंटसी आदि के माध्यम से कवि हृदय की बिखराव को ऐक्स स्थापन देने के लिए लालायित है।'' एक अन्य कवि मुद्राराक्षस का कथन है– ''जीवन की अनर्गलता को भाषा की निरर्थकता और संदर्भहीनता के फलक पर चित्रित करने प्रयत्न किया है। अकविता के कवि परंपरानुमोदित को अपराध समझते हैं।'' इस समय की कविताओं में मौजूद मुख्य घटन हैं– अनास्था एवं अविश्वास, असफलता और घोर नैराश्य की भावना, कुंठा एवं अवसाद ग्रस्त मानव की संकल्पना, अत्याचार, अनाचार एवं अन्याय के प्रति आक्रोश, अस्तित्वबोध, स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान की भावना, रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा तथा सपाटबयानी। ''राष्ट्र के खोखलेपन, दिवालिएपन, पागलपन तथा सामाजिक घिनौनी स्थितियों को देखकर कवियों के मन में आत्मग्लानि जैसे विचार उत्पन्न हुई। तत्पश्चत् प्राचीन जर्जर मूल्यों, अव्यवस्था, दुर्गति, विघटन आदि से क्षुब्ध होकर व्यंग्योक्तियों और विद्रूपताओं के माध्यम से कवियों ने अपनी वाणी को मुखरित किया। उनमें नव्यता के प्रति न कोई आकर्षण था न प्राचीनता के प्रति व्यामोह। विघटित मानव मूल्यों में कवि अस्तित्वबोध तलाश रहा था।''[86]

इस काल के कुछ प्रमुख कवि और उनकी कविताएँ हैं– जगदीश चतुर्वेदी–'निषेध', भारत भूषण अग्रवाल–'एक उठा हुआ हाथ', राजकमल चौधरी–'मुक्तिप्रसंग', सुधामा पाण्डेय 'धूमिल'–'संसद से सड़क तक', अशोक वाजपेयी–'संक्रांत', श्याम परमार–'कविताएँ : कविता से बाहर', चन्द्रकांत देवताले–'हड्डियों में छिपा ज्वर', कैलाश वाजपेयी–'तीसरा अंधेरा', अजित कुमार–'कविताएँ 1964', गंगा प्रसाद विमल–'विज्जप', सौमित्र मोहन–'लुकमान अली'।

3.4.7.1 साठोत्तरी काव्य की प्रवृत्तियॉ

3.4.7.1.1**भय, आतंक की उपस्थिति अथवा संत्रासः** कवि के चारों ओर भय व आतंक का वातावरण है, उसे वह ध्वस्त करने में असमर्थ है तथा उसे ही अपना संरक्षक के रूप में स्वीकारता है।''और आवाज़ ऊँची कर/जंगल संरक्षक हैंहमारा/जंगल विधान है हमारा/भंग नहीं कर सकता उसे कोइ/बरदाश्त नहीं हो सकती/जंगल की तबाही।''[87]

3.4.7.1.2**व्यवस्था की अव्यवस्था के प्रति आक्रोश :** इन कवियों का विश्वास है कि व्यवस्था आम आदमी के लिए नहीं, बल्कि आम आदमी व्यवस्था के लिए है। व्यवस्था से संवेदना, मानवता की आशा करना ठीक नहीं है।''वे हमेशा बेरहम होते हैं/दूसरों का आकाश अपनी मुट्ठियों में बंद करने वाले/निचोड़ लेते हैं होठों की मुस्कान/घनहर खेतों में सुरंगें बिछा देते हैं।''[88]

3.4.7.1.3**अव्यवस्था के उत्तरदायी राजनीतिज्ञों के प्रति आक्रोश :** देश में जो व्यवस्था और उत्पीड़न की स्थिति है, जिस प्रकार जनता शोषित एवं संत्रस्त हैं, उसकी वजह यहॉ के राजनीतिज्ञ वर्ग के पूँजीवादी दिमाग के

कारण है। जनता को नेता हर तरीके से लूट रहे हैं।''आदमी की खाल में/गधे और भेडिये का/आधा–आधा भेजा लिए/घूमते–घूमते राजनीति के झण्डे लगा/पूरा देश बूचड़खाने की तरह है।''[89]

3.4.7.1.4**स्वाभिमान नष्ट होने की कचोट :** अस्तित्व का संकट और उससे उत्पन्न आक्रोश इस काल के कविताओं की विशेषता है। शोषक वर्ग ने जनता को प्रतिक्रियाहीन समूह के रूप में तब्दील कर दिया है। कोई भी प्रतिक्रिया जो शासक वर्ग के खिलाफ उठता है वह दबा दिया जाता है। कवि निराश, कुठा, आत्मपीड़न महसूस करता है, किन्तु कह नहीं सकता, क्योंकि बोलना मना है। उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति पर पाबंध है।''बहुत कुछ मैं सोचता रहता हूँ पर कहता नहीं/बोलना भी है मना, सच बोलना तो दर किनार/इस सिरे से उस सिरे तक सब सरीके जुर्म हैं/आदमी या तो जमानत पर रिहा है या फरार।''[90]

3.4.7.1.5**पूर्ण मोहभंग की स्थिति :** कवि का मोहभंग पूर्ण स्थिति को पा गया है और इसके विरुद्ध एक आक्रोश उमड रही है, जो न केवल कविता के स्तर पर बल्कि कवि खुलकर समाज के सामने अपने तेवर के साथ आना चाहता है। इसलिए वह इस आक्रोश को परिवर्तन में तब्दील करना चाहता है।

3.4.7.1.6**विद्रोह और क्रांति की भावना :** कवि क्रांति द्वारा विद्यमान भ्रष्ट व्यवस्था को नष्ट कर देना चाहता है। प्रत्येक गरीब व्यक्ति को वह इसके लिए आह्वान करता है। इसलिए वह कहता है –''मैं हर नंगे आदमी को/शंकर बना दूंगा/...../हर उंगली को ..... त्रिशूल''[91]

3.4.7.1.7 **भाषा के प्रति नए तेवर :** कवियों ने भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का सही साधन बनाया है। भाषा के अभिव्यक्ति की पारंपरिक माध्यम को नकारकर नये प्रयोगों पर बल दिया है। इन्होंने भाषा को अपने ढंग से ढालने का साहस किया है।''अब यहॉ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है/पेशेवर भाषा के तस्कर संकेतों/और बैलमुत्ती इबारतों में/अर्थ खोजना व्यर्थ है।''''इन कवियों ने भाषा को सही मायने में अभिव्यक्ति प्रेषण का कंप्यूटरीकृत यंत्र या यों कहें हथियार बना डाला है।''[92]

3.4.7.1.8 **गद्यात्मकता की प्रचुरताः** यहॉ काव्य भाषा सीधे गद्य के निकट पहुॅच गई है। ''इस काव्य भाषा में शब्द एवं अर्थ की लय न होते हुए भी जीवन का संगीत अवश्य भरा हुआ है।''[93]

3.4.7.1.9 **कथ्य में सपाटबयानी :** इन कवियों ने लक्षण व्यंजन शक्तियों का प्रयोग न कर सपाट भाषा का प्रयोग किया है। डॉ. नामवर सिंह कहते हैं– ''छठे दशक के अंत और सातवें दशक के आरम्भ में सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो उठी कि उसकी चुनौती के सामने बिम्ब विधान कविता के लिए अनावश्यक भार प्रतीत होने लगा – समस्या परिस्थितियों के सीधे साक्षात्कार की थी, प्रश्न हर चीज को उसके सही नाम से पुकारने का था..... इस मुश्किल ने क्रमशः उस प्रवृत्ति को जन्म दिया जिसे सपाटबयानी कहते हैं।''[94]

3.4.7.1.10 **विविध विषयों एवं भाषाओं से ग्रहीत शब्द भण्डार :** तत्सम शब्दावली को कम तथा देशज व तत्भव शब्दावली को अधिक महत्व दिया है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में शब्दों को अभिव्यंजना शक्ति के विकास हेतु किया गया है। ''इस काव्य परंपरा में धर्म, दर्शन, इतिहास, राजनीति,

भूगोल, समाजशास्त्र तथा विज्ञान जैसे विषयों से संबंधित शब्दावली का भरमार है। इन कवियों ने भाषा की सार्थकता को बढ़ाने के लिए इन शब्दों का चयन किया व सुविधानुसार इनमें कांट–छांट भी की।''[95]

3.4.7.1.11 **यौन संदर्भों से संबंधित अश्लीलता :** साठोत्तरी कवियों ने मुख्य रूप से नैतिकता एवं परंपरागत नीति व रीतियों पर प्रश्न चिह्न लगाने हेतु अश्लील शब्दों का प्रयोग किया है।

3.4.7.1.12 **परिवेश से जुड़ी हुई सांकेतिकता :** साठोत्तरी कवि बयान या वक्तव्य न देकर सांकेतिक होता है। यह ज्यादातर राजनीतिक खोखलेपन को उजागर करने के लिए किया गया है।

3.4.7.1.13 **बिम्ब, प्रतीक और छन्द :** सामान्य जन जीवन से बिम्बों और प्रतीकों का चयन किया गया है। जैसे भेड़, भेड़िया, अजगर आदि।इन्होंने मुक्त छन्द का प्रयोग किया है। लोकोक्ति एवं मुहावरों का भी बहुलता से प्रयोग इस काव्य धारा में हुआ है।

सामाजिक नैतिकता एवं देशी राजनीति द्वारा प्रस्तुत झूठे वादों के परिणामस्वरूप जिस कदर भ्रष्टाचार, भूखमरी, गरीबी, पारस्परिक विद्वेष एवं अविश्वास का दायरा बढ़ा है, उन सब से साठोत्तरी काव्यधारा ने रस ग्रहण किया है। अतः देश की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थिति को परे रखकर इस काव्यधारा का आंकलन नहीं हो सकता है। खासकर राजनीतिक परिस्थिति जो साठोत्तरी काव्यधारा का मुख्य स्रोत है।

3.4.8 **सत्तरोत्तरी कविता :** बदलती परिस्थिति के अनुसार मनुष्य और समाज के संबंध और भी जटिल होते जा रहे हैं। इसलिए कवियों ने समाज में मनुष्य की सही स्थिति का अंकन करने हेतु हर वह परिस्थितियों से अपनी कविता को जोड़ने का प्रयास किया है जो मनुष्य से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। सत्तरोत्तरी कविता, कविता के परिवर्तन की वह स्थिति है जहॉ हिन्दी कविता वाद मुक्त होकर समकालीन कविता की परिधि में आ रही थी। कविता उस रूप में ढल रही थी जिसे हम समकालीन कविता कहते हैं।

3.4.8.1**सत्तरोत्तरी कविता की प्रवृत्तियॉ**

3.4.8.1.1 **राजनैतिक यथार्थ का पर्दाफाश :** देश की राजनीति अवसरवादिता और आदर्शहीनता का उदाहरण बन गई है। नेतागण साधारण जनता को कोरी भाषणों के जाल में फॅसाकर अपनी कुर्सी बचा रहे हैं। कवियों ने इस राजनीतिक ढकोसले को अपनी कविता में दर्शाया है। समाजवाद के नाम पर देश की भ्रष्ट राजनीतिक नेता आम जनता का शोषण कर रही है। इसलिए जनता की चेतना को जगाने के लिए और इन शोषकों का असली चेहरा सामने लाने के लिए कवि धूमिल करते हैंः—''समाजवाद/उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का/एक आधुनिक मुहावरा है/मेरे देश का समाजवाद/मालगोदाम में लटकी हुई/उन बाल्टियों की तरह है/जिन पर आग लिखा है/और उनमें भालू और पानी भरा है।''[96]इस समय की प्रमुख राजनीतिक घटना आपातकाल की थी। यह स्वतंत्र भारत के इतिहास का सबसे घिनौना पृष्ठ है। ''किराये पर लेना चाहती है मस्तिष्क/बेच देती है अनगिनत

लाठियॉ/दरवाजों पर लाद देती है लाल निशान/और झुकी हुई झोपड़ियों में/सिसकता है क्रोध उबलने के लिए।''[97]डॉ. बलदेव वंशी द्वारा संपादित 'काला इतिहास' नामक काव्य संग्रह में 34 कवियों की आपातकाल विरोधी कविताएँ संग्रहीत है। सभी सृजनात्मक कार्यों का आधार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर निर्भर है। जहॉ पर इसका हनन होता है वहॉ रचना का मूल उद्देश्य नष्टप्राय हो जाता है। इसी का विरोध इस समय के कवियों ने खासकर किया है। विकास के नाम पर किसानों की खेती छीनी जाती है और उन्हें उपयुक्त मुआवजा भी नहीं मिलता। नेताओं का पूँजीपतियों से इस नाजायज़ गठबंधन को कवि दिखाता है–''हम चेतुआ हैं बाबूजी/बस काबू में नहीं रहा शरीर यह ससुरा/पड़े हैं इस सुख के ओसरे में।/...../अपना नाम धाम कुछ भी नहीं,/बस काम ही सब कुछ है।''[98]

3.4.8.1.2 **पारिवारिक संदर्भ :** अभावग्रस्त जीवन जी रहे निम्न वर्ग के परिवार जनों की सघर्ष भरी दास्तान को इन कवियों ने अपनी कविता में चित्रित किया है।

3.4.8.1.3 **स्त्री की आज़ादी :** स्त्री पर हो रहे अत्याचार का सही चित्रण इन कवियों ने किया है। स्त्री पर जिस समाज ने रूढ़ियों और परंपराओं का भोज डाला है, उससे आज स्त्री मुक्त होना चाहती है।''पूर्वनिर्धारित रीतियों को, धार्मिक नीतियों को आज की स्वाभिमान स्त्री नहीं मानती बल्कि उसके खिलाफ आवाज उठाती है।''[99]

3.4.8.1.4 **शहरी और ग्रामीण परिवेश का चित्रण :** इन कवियों ने शहर की भावहीन एवं संवेदनशून्य जीवन को अपनी कविताओं में दिखाया है।

प्रतिक्रियाहीनता एक भयानक स्थिति है और शहर का आदमी इसका आदी है। स्वार्थ के घेरे में फसा आदमी केवल अपने बारे में सोचता है, एक असुरक्षा का भाव हमेशा रहता है। उसी प्रकार गॉव में किसान अपनी मेहनत की कमाई भी ठीक से प्राप्त नहीं करता। उसे प्राकृतिक विपधा, सूदखोरों के शोषण आदि से निरंतर संघर्ष करना पड़ता है।

3.4.8.1.5 **व्यंग्यात्मकता :** व्यंग्यात्मकता इस काल की कविता की जान है। इन कवियों ने लगभग सभी सामाजिक, राजनीतिक विषयों पर व्यंग्य कसा है। किसान, मज़दूरों, स्त्री–दलित शोषण, शहरी जीवन, व्यवस्था, सरकारी बाबुओं, नेताओं आदि सभी पर व्यंग्य किया है।''सत्तरोत्तरी कवियों ने भ्रष्टाचार, बेईमानी, असत्यवादिता, अवसरवादिता, स्वार्थपरता, अनैतिकता, चरित्रहीनता आदि पर बड़ा गंभीर व्यंग्य किया है और अपनी प्रबल परीक्षा शक्ति का परिचय दिया है।''[100]

3.4.8.1.6 **आपातकाल का विरोध :** आपातकाल में जनतांत्रिक मूल्यों पर पाबंदी लगी हुई थी। इस काल में, प्रजातंत्र, न्यायपालिका व नागरिक स्वतंत्रता पर पाबंदी थी। व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाने पर बिना किसी बात के जेल में डाला जा सकता था। जनता सहमी हुई सी थी।''आपातकालीन छुप्पी खतरनाक छुप्पी थी। इस काल में, आदमी को कुचलने के लिए धड़ाधड़ अध्यादेश जारी हुए थे। संविधान और न्यायालय कब्रगाह बना दिए गए थे। अखबार मौन थे। जो आरोप लगा रहा था वही फैसला सुना रहा था।''[101]''एक गहराते हुए आतंक की परछाइयॉ/लावा उगलती हैं कौन जाने इस तरह कैसे हवायें रोज

अपने/रुख बदलती हैं/हर तरफ मुखबीर अंधेरे चौकसी पर हैं/अब सुबह की रोशनी की बात क्यों होगी?''[102]– उमाशंकर तिवारी

3.4.8.1.7 **दलित व्यथा का चित्रण :** दलितों पर हो रहे अत्याचारों का चित्रण कवियों ने किया है। उच्च जाति के लोग सत्ता के लोगों से गठबंधन कर अपनी मनमानी करते हैं। ''दलितों पर होने वाले अन्याय और अत्याचार का कवियों ने सख्त विरोध करते हुए, उनके प्रति गहरी आत्मीयता का परिचय दिया है और दलितों में पनप रही संघर्ष चेतना को बहुत सही ठहराया है।''[103]

3.4.8.1.8 **भाषा एवं शिल्प :** सत्तरोत्तरी कवि अपने वर्ग विशेष में सीमित न रहकर जनसाधारण तक पहुॅचने की कोशिश की है। इसलिए वह जनभाषा में कविता लिखता है। वह शिल्पगत दुरूहता नहीं शिल्पगत सादगी चाहता है। इसलिए कवि तत्सम शब्दों को त्यागकर तद्भव शब्दों को ग्रहण करना चाहता है। इनका लक्ष्य क्लिष्ट एवं दुरूह शब्दों को त्यागकर जनसाधारण के लिए बोध गम्य सरल शब्दों का प्रयोग करना है।''सत्तरोत्तरी कवि कविता को सीमित दायरे से निकालकर, विशाल जन समुदाय तक पहुॅचाना चाहता है, अतः ऐसे शब्दों का उसने बहिष्कार कर, जन जीवन में प्रचलित तद्भव शब्दों को अपनाया है।''[104] सत्तरोत्तरी कवियों में ज्यादातर कवि गॉव और कस्बों से आने वाले हैं। साथ ही वह अधिकतर मध्यवर्ग एवं निम्न वर्ग से हैं। इसलिए इन्होंने अपनी कविता में देशज तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। अपनी जिन्दगी को बेहतर बनाने में निम्न एवं मध्य वर्ग के जन समुदाय ने बहुत संघर्ष किया है। फिर भी उनका संघर्ष विफल हो जाता है। इस पराजय

भाव से उत्पन्न विडम्बना को वह साधारण जनता के बीच पहुँचाना चाहते हैं और इसलिए इन्होंने साधारण से साधारण भाषा का प्रयोग किया है। इन्होंने अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है।

इनकी कविताओं में देशज लोकोक्तियॉ एवं मुहावरे का प्रयोग भी खूब हुआ है। 'काला अक्षर भैंस बराबर', 'भाड़ में जाएं', 'गूंगे की गुड़ सी', 'दूध की मक्खी' आदि का प्रयोग हुआ है। इन कवियों ने व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग किया है – जैसे 'तिलकू' (गोरख पाण्डेय), 'जीवनदास' (उदय प्रकाश), 'लुकमान अली' (सौमित्र मोहन), 'सेवक राम' (नरेन्द्र मोहन) आदि।

3.4.8.1.8.1 **बिम्ब एवं प्रतीक विधान :** सत्तरोत्तरी कविता में वैचारिक बिम्बों की प्रधानता है। इसके अलावा इन कवियों ने भाव बिम्ब, पारिवारिक बिम्ब का प्रयोग भी किया है। उसी प्रकार इन कवियों की कविताओं में मुख्यः व्यवस्था विरोधी एवं क्रांति की कविता होने के कारण इनमें अधिकतर ऐतिहासिक, देश संबंधी, क्रांति संबंधी, जनता संबंधी प्रतीक मिलते हैं। इसके अलावा सत्तरोत्तरी कवियों ने नए शैलियों का प्रयोग किया है–(क)वक्तव्य शैली (ख)वार्तालाप शैली(ग)किस्सागोई शैली(घ)संबोधनशैली(च)प्रश्नात्मक शैली(छ)प्रश्नोत्तरी शैली।इन शैलियों का प्रयोग कवियों ने कविता में अधिक व्यंग्यात्मकता एवं तीखापन लाने के लिए किया है। अपनी कविता को प्रभावशाली बनाने के लिए कहीं–कहीं कवियों ने अंतराल या स्पेसिंग का प्रयोग भी किया है। यह संवेदना में विस्तार एवं गहराई लाने के लिए इन्होंने किया है। कविता को प्रस्तुत

करने में इन्होंने सपाटबयानी का प्रयोग किया है। इनका मुख्य लक्ष्य आम जनता तक अपने विचारों को पहुँचाना है।

3.5 **निष्कर्ष**

अतः यदी हम हिंदी कविता के इतिहास पर एक नज़र डालें तो यह स्पष्ट होता है कि उसकी प्रकृति हमेशा से प्रगतिशील रही है। उसने बदलती सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति के तहत अपने को ढाला है और वह निरंतर एक विकासोन्मुख पथ पर अग्रसर हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. नगेन्द्र– हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ सं–67
2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी– हिन्दी साहित्य का अतीतः प्रथम भाग, पृ सं–63
3. डॉ. ओमप्रकाश– प्राचीन हिन्दी काव्य, पृ सं–11
4. डॉ. रामकुमार वर्मा–हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ सं–53
5. वही, पृ सं–68
6. वही, पृ सं–68
7. वही, पृ सं–79
8. वही, पृ सं–98
9. वही, पृ सं–101
10. वही, पृ सं–117
11. वही, पृ सं–123
12. प्रभाकर क्षेत्रिय–हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका, पृ सं–57
13. गोविन्दराम शर्मा –हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियॉ, पृ सं–99
14. डॉ. नामदेव उतकर– हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियॉ, पृ सं–50
15. वही, पृ सं–54
16. डॉ. रामकुमार वर्मा –हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ सं–338
17. वही, पृ सं–338
18. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ सं–84

19.डॉ. नामदेव उतकर– हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियॉ, पृ सं–64
20.आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ सं–183
21.डॉ. नामदेव उतकर– हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियॉ, पृ सं–108
22.डॉ. शिवकुमार शर्मा–हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियॉ,पृ सं–313
23.वही,पृ सं–314
24.वही,पृ सं–315
25.वही,पृ सं–318
26.वही,पृ सं–323
27.रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी काव्य संवेदना का विकास, पृ सं–142
28.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–28
29.डॉ. हरदयाल–आधुनिक हिन्दी कविता, पृ सं–32
30.डॉ. रामदरश मिश्र– आधुनिक हिन्दी कविता : सर्जनात्मक संदर्भ, पृ सं–64
31.मुरली मनोहर प्रसाद सिंह–आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ सं–37
32.श्यामचन्द्र कपूर–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ सं–197
33.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–30
34.डॉ. बहादुर सिंह–हिन्दी साहित्य का विकास, पृ सं–105
35.वही,पृ सं–104
36.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–33
37.वही,पृ सं–33
38.डॉ. रामदरश मिश्र– आधुनिक हिन्दी कविता : सर्जनात्मक संदर्भ, पृ सं–65
39.वही,पृ सं–65

40.आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ सं–468
41.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–42
42.वही,पृ सं–70
43.वही,पृ सं–56
44.वही,पृ सं–44
45.डॉ. नगेन्द्र (संपादक)–हिन्दी वड.मय : बसवीं शती, पृ सं–117
46.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–72
47.मुरली मनोहर प्रसाद सिंह–आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ सं–124
48.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–110
49.श्यामचन्द्र कपूर–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ सं–247
50.डॉ. बहादुर सिंह–हिन्दी साहित्य का विकास, पृ सं–122
51.वही, पृ सं–130
52.वही, पृ सं–130
53.वही, पृ सं–131
54.वही, पृ सं–131
55.वही, पृ सं–132
56.वही, पृ सं–132
57.वही, पृ सं–133
58.डॉ. सरिता माहेश्वर–प्रगतिवाद प्रयोगवाद नयी कविता, पृ सं–75
59.वही, पृ सं–95
60.वही, पृ सं–137
61.अज्ञेय (संपादक)– तार सप्तक, भूमिका
62.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–103

63.नामवर सिंह –कविता के नए प्रतिमान, पृ सं–26

64.वही, पृ सं–35

65.वही, पृ सं–36

66.डॉ. सरिता माहेश्वर–प्रगतिवाद प्रयोगवाद नयी कविता, पृ सं–166

67.वही, पृ सं–230

68.वही, पृ सं–296

69.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–119

70.डॉ. सरिता माहेश्वर–प्रगतिवाद प्रयोगवाद नयी कविता, पृ सं–242

71.डॉ. रामदरश मिश्र– आधुनिक हिन्दी कविता : सर्जनात्मक संदर्भ, पृ सं–69

72.डॉ. सरिता माहेश्वर–प्रगतिवाद प्रयोगवाद नयी कविता, पृ सं–245

73.डॉ. रामदरश मिश्र– आधुनिक हिन्दी कविता : सर्जनात्मक संदर्भ, पृ सं–138

74.नामवर सिंह –कविता के नए प्रतिमान, पृ सं–93

75.डॉ. सरिता माहेश्वर–प्रगतिवाद प्रयोगवाद नयी कविता, पृ सं–257

76.वही, पृ सं–263

77.देवेश ठाकुर–नयी कविता के सात अध्याय, पृ सं–92

78.वही, पृ सं–97

79.वही, पृ सं–109

80.वही, पृ सं–120

81.डॉ. बहादुर सिंह–हिन्दी साहित्य का विकास, पृ सं–161

82.वही, पृ सं–167

83.डॉ. मनोज सोनकर–सत्तरोत्तरी हिन्दी कविता : संवेदना शिल्प और कवि, पृ सं–66

84.वही, पृ सं–78

85.जगदीश नारायण श्रीवास्तव–समकालीन कविता पर एक बहस, पृ सं–102

86.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–125

87.डॉ. विश्वबंधु शर्मा–साठोत्तरी हिन्दी कविता, पृ सं–51

88.वही, पृ सं–52

89.वही, पृ सं–52

90.वही, पृ सं–53

91.वही, पृ सं–54

92.डॉ. बहादुर सिंह–हिन्दी साहित्य का विकास, पृ सं–177

93.वही, पृ सं–179

94.वही, पृ सं–179

95.वही, पृ सं–180

96.सुधामा पाण्डेय धूमिल–संसद से सड़क तक, पृ सं–139

97.डॉ. विनय–पुरर्वास का दण्ड, पृ सं–34

98.राजीव सक्सेना–कविता की कवितांतर,पृ सं–72,73

99.डॉ. मनोज सोनकर – सत्तरोत्तरी हिन्दी कविताःसंवेदना शिल्प और कवि,पृ सं–191

100. वही, पृ सं–262

101. वही, पृ सं–132

102. डॉ. शम्भुनाथ सिंह (संपादक)–नवगीत दशक 2, पृ सं–73

103. डॉ. मनोज सोनकर – सत्तरोत्तरी हिन्दी कविताःसंवेदना शिल्प और कवि, पृ सं–171

104. वही, पृ सं–688

Pradeep Raj P. “ Search for the cultural identity of India in contemporary Hindi poetry (With special reference to 1980-2000)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2017

चौथा अध्याय

समकालीन कविता में भारत की सांस्कृतिक अस्मिता – सन् 1980 से 2000 तक

कविता संघर्ष का दूसरा नाम है। वह समाज के पीड़ित व शोषित जनता की आवाज़ है। बाज़ार की चकाचौंध में ज़मीनी सच्चाईयों से हम कोसों दूर जा रहे हैं। आदमी में कविता और कविता का आदमी कहीं लापता है। कविता मानवीय यथार्थ और नियति की अभिव्यक्ति का सबसे प्राचीन माध्यम है। वह हाशिए पर खड़े आदमी का जीवन यथार्थ है। ''कविता उस अंतिम मनुष्य की रक्षा के लिए चिंतित होती है जो भीषण समय के चक्रव्यूह में फॅस गया है। ऐसे समाज में जहॉ 'समय का रथ ही घिर गया हो' वह आह्वान की तरह उठने के लिए प्रस्तुत रहती है।''[1] समकालीन कविता, विशेषकर 1980 के बाद की कविता अपने साथ सृजनात्मक मौलिकता को ले आई है। इसने कविता की परंपरा में एक नया अर्थ जोड़ दिया है। विषयवस्तु, प्रस्तुतीकरण शैली, यथार्थ को देखने की रीति आदि में एक नयापन देखने को मिलता है। भूमंडलीकरण के फलस्वरूप एक नई बाज़ार व्यवस्था का उद्भव हुआ है जो हमारे सामने छद्म यथार्थ को प्रस्तुत करता है। बिल्कुल उस मारीच की तरह जिसने राम को छला था और आज वह कई रूपों में जनता को छल रही है।

सन् 1980 और 2000 के बीच कविताऍ उस परिवर्तन से गुज़र रही थीं जहॉ एक ओर भारत में भूमण्डलीकरण का प्रभाव गहराता जा रहा था तो दूसरी ओर भ्रष्ट नेता एवं सरकार की जनविरोधी नीतियॉ भारतीय समाज को कई हिस्सों में बॉट रही थीं। जनता में मोहभंग की स्थिति थी। जनता मूल्यों को अर्थहीन समझने लगे थे। ऐसी परिस्थिति में समकालीन कवियों ने भारत की सांस्कृतिक तत्वों को अपनी कविताओं में शामिल किया; ऐसे तत्व जो सकारात्मक हैं और लोक जीवन के निकट

हैं। केवल शहरी मध्यवर्ग के अन्तर्मन की कुंठा का चित्रण न करके कवियों ने गॉव की तरफ रुख लिया। सत्ता के शोषण तंत्र में फंसकर आत्महत्या कर रहे किसानों की व्यथा कथा अपनी कविताओं के ज़रिए प्रस्तुत किया। अपनी कविता में लोक भाषा एवं शब्दों का प्रयोग कर इन कवियों ने भारत की सांस्कृतिक अस्मिता को सजीव रखा। इन कवियों ने स्मृति के सहारे बचपन में छूट गए प्रकृति एवं मानवीय संबंधों पर ज़ोर दिया है। कवि कभी पुराने मित्रों के बारे में, तो कभी पुरखों के घर–आंगन की याद करते हैं। कवि मंगलेश डबराल कहते हैं –

''बहुत बूढ़े होने पर भी आप अगर एक भूले–भटके बच्चे की तरह
घर जाये ंतो वहॉ पिता

मॉ या अन्य स्वजन होंगे जो ठीक बचपन में आपको पहचान लेंगे।

- .....

एक पेड़ की तरह जाना बेहतर होगा। एक बड़ा पेड़ आपको अपने
भीतर छिपा लेगा।''[2]

भारत की संस्कृति की एक विशेषता यह है कि वह मनुष्य और प्रकृति के रागात्मक संबंध को महत्व देती है। वह इंसान और प्रकृति को एक दूसरे से जुड़े हुए मानती है। अतः समकालीन कविता ने इंसान और प्रकृति के अंतःसंबंध को महत्व दिया है। समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में प्रतीक, मिथक, फैंटसी, उपमा आदि का प्रयोग इंसान की विभिन्न परिस्थितियों को चित्रित करने के लिए किया है। समकालीन

कविता मानव और प्रकृति को अभिन्न अंग के रूप में देखता है। कवि मदन कश्यप कहते हैं–

''किसी सूर्यपुत्र की तरह

कवच के साथ ही जन्म नहीं लेती हैं

सीपियॉ

.....

बस कभी–कभी ही

उनकी नन्हीं सी जीवन यात्रा में

पैदा होता है कोई व्यतिक्रम

जब ऑखों–सी कोमल उनकी देह में

घुस आते हैं ठोस कण

तब सागर से भी गहरी पीड़ा

नदी की अजस्र धारा–सी

निरंतर वेदना झेलती हुई

अपने जीवन रस से उन्हें पालती हैं

सीपियॉ।''[3]

इस काल की कविताओं में व्यक्ति के निजी अनुभवों का बहुत बारीकी से चित्रण हुआ है। इन कविताओं में प्रेम प्रगाढ़, सघन, मार्मिक

और एक विकल्प के रूप में व्यक्त होता है। सन् 1980 के बाद की कविताओं के केन्द्र में मुख्यतः आदमी है। यह कविता उस जगह ठहरती है जहाँ निष्करुण व्यवस्था ने मूल्यवान मानव–मूल्यों, रागात्मक संबंधों और सांस्कृतिक परंपराओं को कमज़ोर किया है, चाहे वह घर, गॉव, शहर, महानगर या समूचा देश हो। असुरक्षित होते जा रहे जीवन के साथ कवि की गहरी सहानुभूति और अपनापा है। कवि सतत् क्रियाशील हैं कि जीवन से खालीपन और असुरक्षा को, कम ही सही, बरख़ास्त करने में उसकी कविता भूमिका निभा सके। कवि पंकज चतुर्वेदी कहते हैं

''एक रोचक अजायबघर में कैद होकर

दिखते हुए हैं हम पागल चेहरे

अपनी अकारण हँसी

और बेतरतीब रुलाई के साथ

एक अनोखे संग्रहालय में

तब्दील होता हुआ है

हमारा अस्तित्व

अपनी समृद्ध परंपरा की गरिमा

और संशयग्रस्त प्रासंगिकता की शोभा के साथ।''[4]

समकालीन कविता लोक, पौराणिक, धार्मिक एवं जातीय मिथकों का प्रयोग करती है। यह जनजातीय संस्कारों को भी अपनी कविता में

स्थान देती है। यह कविता जनजातीय जीवन का बहुत गहराई से चित्रण करती है। लोकनिरूपण और वैज्ञानिक चेतना इसके मुख्य घटक हैं। ये कवि स्मृति, स्वप्न, अंधकार, नींद, छाया व फैंटसी का सहारा लेकर काव्य करते हैं। यह समाज के हाशिएकृत वर्गों के दुख दर्द को आवाज देती है। उनके स्वप्नों, उनके उम्मीदों को साकार करने हेतु उनके साथ कवि संघर्ष की राह पर चलने के लिए सतत् तैयार हैं। भारत की सांस्कृतिक विरासत इन्हीं तत्वों से जीवित है। अतः समकालीन कवि इन्हें कविताई प्रतिरोध की तरह मूल्यहीनता के विरुद्ध प्रयुक्त करते हैं। इसके साथ–साथ इस काल के कवियों ने विस्थापन की समस्या से ग्रस्त लोगों की संवेदना का चित्रण किया है। देश के विकास के नाम पर बड़ी संख्या में लोगों को विस्थापन की समस्या झेलनी पड़ी है। इससे भारतीय ग्रामीण जीवन पर भयानक असर पड़ा है। इन कवियों ने इस खतरनाक स्थिति को तथा किसानों के मानसिक द्वन्द्व का चित्रण किया है। कवि विनोद कुमार शुक्ल कहते हैं–

''कुएँ के तल की कुँआसी इच्छा

उसकी अंदरूनी गहरी

बारूद से तड़कने की

परन्तु अपने ही निकले हुए पत्थरों और मिट्टी से भरता हुआ कुआँ

कुआँ न होने की तरफ लौट रहा है

अब यह पलायन था कुएँ का

गॉव पहले उज़ाड़ हो चुका था।''[5]

इन कवियों में एक उम्दा बात है – इनके सपने और इनमें जीवन–जगत के लिए प्रबल आस्था। इन दोनों चीज़ों ने इनकी कविताओं को पहचान देने में मदद की है। निरी वैयक्तिकता के घटाटोप से बाहर वे वृहत्तर मानव समुदाय की हितरक्षा में है। समकालीन कविता जातिवाद, सांप्रदायिकता, हिंसा एवं अमानवीयता के विरुद्ध एक प्रतिरोध खड़ा करती है क्योंकि भारत की संस्कृति का वास्तविक स्वरूप लोकतांत्रिक है। वह अहिंसा एवं सहअस्तित्व का संदेश देती है। निर्बल लोगों के उत्थान की बात करती है। परन्तु आधुनिक उपभोक्तावादी समाज में इंसान को महज़ वस्तु के रूप में देखा जाता है। सांस्कृतिक उन्नति के बजाए केवल आर्थिक उन्नति देखी जाती है। इंसान एवं प्रकृति दोनों आज बाज़ार में महज़ विक्रय की वस्तु रह गई है। इस अमानवीयता के विरुद्ध समकालीन कविता मानवीयता, अहिंसा आदि का संदेश प्रदान करती है।

4.1 **ग्रामीण जीवन**

भारत की संस्कृति उसके गॉवों में बसी है। वहीं से भारतीय मूल्यों का आविर्भाव हुआ है। अतः समकालीन कवियों ने ग्रामीण परिवेश का चित्रण कर वहॉ की मूल्यवान एवं विकासशील विरासत को अपनी कविताओं के ज़रिए बचाने का प्रयास किया है। समकालीन कविता में ग्रामीण जीवन, किसान परिवार एवं ग्रामीण प्रकृति का चित्रण हमें प्राप्त होता है। लोक जीवन की सहजता व सच्चाई हमें इसमें प्राप्त होती है। ग्रामीण परिवेश का चित्रण मनुष्य के एक अभिन्न सहचर और अनिवार्य

उपागम के रूप में की गई है। ग्रामीण जीवन मानवीय संबंधों और मूल्यों को महत्व देती है। बाज़ारवादी संस्कृति ने मानवीय संवेदना को नष्ट किया है। उसने व्यक्ति को स्वार्थ की खाई में ढ़केल दिया है। इनके खिलाफ़ समकालीन कवियों ने ग्रामीण जीवन में व्याप्त भाईचारा, ममता, दोस्ती, प्रेम आदि नष्ट हो रहे मूल्यों को शब्दबद्ध कर मानवीयता को बचाने का प्रयास किया है। कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं–

''मॉ को कैसे पता चलेगा

इतने बरसों बाद

हम फिर उसके घर आये हैं–

कुछ पल उसको अचरज होगा,

चेहरे पर की धूल–कलुष से विभ्रम भी–

फिर पहचानेगी

हर्ष–विषाद में डूबेगी–उतरायेगी।''[6]

गॉव में छूटे बचपन की याद कवि अशोक वाजपेयी करते हैं–

''चिड़ियॉ आयेंगी

हमारा बचपन

धूप की तरह अपने पंखों पर

लिए हुए।''[7]

गॉव के त्योहार ग्रामीण जीवन का एक अभिन्न अंग है। यह वैयक्तिक स्वार्थ के खिलाफ़ सामाजिकता का व समभाव का रूप है। यहॉ लोग हॅसी–खुशी एक दूसरे से मिलते हैं, सुख–दुख बॉटते हैं। कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं–

''लोग होंगे

रंगीन और उजाले कपड़ों में मढ़े हुए

सस्ती चीज़ों से अपने खुशियॉ मनाते

लोग होंगे

.....

चखचख करती औरतें होंगी

और खो–खो जाते बच्चे

.....

चीरती–चिल्लाती अनगिनत आवाज़ें होंगी

और मेरे होठों पर जागेगा

एक प्यारा–सा हल्का संगीत।''[8]

4.2 **प्रकृति एवं पर्यावरण**

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण एक मुख्य घटक है। उसका मानवीय जीवन से एक गहरा संबंध है। यह संस्कृति मानव को प्रकृति का एक

अभिन्न अंग के रूप में देखता है। भारतीय संस्कृति की इसी विशेषता को समकालीन कवियों ने अपनी कविता के ज़रिए दर्शाया है। समकालीन कवियों ने इंसान द्वारा पीछे छोड़ गए उनके आत्मिक संबंधों की रागात्मकता को शब्दों में बांधकर, देहाती जीवन और वहॉ के पर्यावरण के विरल दृश्यों को पाठकों के सामने लाते हैं जिसमें वह मानवीय संबंधों के विभिन्न तलों का चित्रण कर तथा अपने परिवेश से उसकी नैसर्गिक एकरूपता को दिखाते हैं। समकालीन कविता मानव और प्रकृति के संबंधों का पोषण कर इंसान को अपने मूल से जुड़े रहने और अपनी संस्कृति की सही पहचान करने में उसकी सहायता करती है। समकालीन कविता की प्रकृति मनुष्य के क्रियाकलापों में भी है और उससे स्वतंत्र भी है।

इन कविताओं में मनुष्य और प्रकृति के सह अस्तित्व देख सकते हैं। सकमालीन कविता प्रकृति को मनुष्य के भावानुरूप ढालते हैं। ''कहीं मनुष्य प्रकृति के अनुसार ढलता है और कहीं उसे अपने अनुसार ढालता है। मनुष्य और प्रकृति का यह द्वन्द्वात्मक संबंध इस कविता में नए सिरे से जीवंतता ग्रहण करता है। प्रकृति के प्रति शोषणवादी – आधुनिकतावादी पाश्चात्य नज़रिए के विपरीत, उसके साथ साहचर्य और सह अस्तित्व का सदियों पुराना हमारा भारतीय दृष्टिकोण इस कविता में एक नई ताज़गी के साथ निबद्ध है।''[9] बाज़ारवादी संस्कृति ने न सिर्फ मनुष्य को परिवार, समाज से दूर किया है बल्कि उसे प्रकृति से भी कोसों दूर ले गई है। साथ ही प्रकृति का अंधाधुंध शोषण हो रहा है जिसका असर हमारी ज़िन्दगी पर पड़ने लगा है। कवि मदन कश्यप कहते हैं–

''कहॉ है पृथ्वी

कहॉ हैं वे खुली दिशायें

जिनमें दूर बहुत दूर तक

अपनी हरी–हरी दूब से

आसमान को सहलाती हुई दिखती थी पृथ्वी

कहॉ है पृथ्वी।''[10]

विकास के नाम पर पेड़ काटे जा रहे हैं, नदी के पानी को दूषित किया जा रहा है, किसानों से खेती छीनकर पूँजीपतियों को दिए जा रहे हैं। कवि ज्ञानेन्द्रपति कहते हैं–

''नदी!

तू इतनी दुबली क्यों है

और मैली–कुचैली

मारी हुई इच्छाओं की तरह मछलियॉ क्यों उतरायी हैं

तुम्हारे दुर्दिनों के दुर्जल में''[11]

4.3 **सहिष्णुता**

भारतीय संस्कृति एक महानदी के समान है जिसके रूपायन में कई छोटी–मोटी धाराओं की भूमिका रही है। भारतीय संस्कृति की मूल शक्ति अंतरावलम्बन में है। भारतीय संस्कृति का स्वरूप बहुसामुदायिक है।यह

अनेक धर्मों, जातियों व भाषाओं की संगमभूमि है। अतः यहॉ धार्मिक समभाव हमेशा रहा है। भारतीय संस्कृति की मूल प्रकृति धर्म निरपेक्ष रही है। परंतु सांप्रदायिक शक्तियॉ अपने स्वार्थ लाभ के लिए भारतीय समाज को धर्म एवं जाति के नाम पर बॉट रही हैं। असहिष्णुता पैदा कर रही हैं। कवि कुमार अम्बुज कहते हैं–

''धीरे–धीरे क्षमाभाव समाप्त हो जाएगा

प्रेम की आकांक्षा तो होगी मगर ज़रूरत न रह जाएगी

.....

आएगी क्रूरता और आहत नहीं करेगी अमारी आत्मा को

फिर वह चेहरे पर भी दिखेगी

लेकिन अलग से पहचानी न जाएगी

.....

और सोख लेगी हमारी सारी करुणा

हमारा सारा श्रृंगार''[12]

सह–अस्तित्व इस संस्कृति की जीवन–पद्धति में सर्वत्र व्याप्त है। परन्तु सांप्रदायिक शक्तियॉ इस मूल्य को खोखला बना रही हैं। वे जनता को एक दूसरे के खिलाफ भड़का रही हैं। अपने राजनीतिक लाभ को साधने के लिए दंगा करा रही हैं। समकालीन कवि इन सब के प्रति जागरूक हैं।

4.4 **लोकतांत्रिक भावना**

भारत की संस्कृति लोकतांत्रिक रही है। यहॉ हर धर्म, जाति एवं भाषा के लिए समभाव रहा है। यहॉ हर व्यक्ति अपने विचार की अभिव्यक्ति कर सकता है। परंतु बाज़ारवादी व्यवस्था भारतीय समाज में सदियों से मौजूद लोकतांत्रिक भावना को खोखला बना रही है। समकालीन भारत में हिंसा और राजनीति का रिश्ता और अधिक गहरा हो गया है। वह रिश्ता लगभग संस्थाबद्ध रूप ले चुका है। इसका सबसे दुखद परिणाम यह है कि सामान्य जन इस गिरोह को अपनी ऑखों के सामने पाने के बावजूद उसे एक जानी–पहचानी वास्तविकता मानकर चुपचाप स्वीकार कर लेता है। यह एक चिंताजनक स्थिति हैं इसने सांप्रदायिक शक्तियों को भी बढ़ावा दिया है। यह वास्तव में लोकतांत्रिक मूल्यों की गिरावट है। ऐसी स्थिति में समकालीन कविता का यह उत्तरदायित्व है कि वह जन–विरोधी तत्वों के खिलाफ मोर्चा संभाले। इस प्रक्रिया में समकालीन कवियों ने आम आदमी के संघर्ष को अपनी कविताओं में दर्ज किया है। कवि राजेश जोशी कहते हैं–

''बच्चे काम पर जा रहे हैं

हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह

भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना

लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह

काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे?''[13]

आज भारतीय समाज में बहुत सारे स्तरों पर असमानता फैली हुई है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक स्तरों पर आज साधारण लोगों को अपनी मूलभूत अधिकार भी नहीं मिल पा रहा है। लोग अपने अधिकारों से वंचित हैं। समकालीन कवियों ने जनता के हक़ के लिए कवितायें लिखी हैं। लोकतांत्रिक मूल्यों के क्षरण से होने वाली भयानक स्थिति से कवि राजेश जोशी हमें रू–ब–रू कराते हैं–

''कटघरे में खड़े कर दिए जायेंगे, जो विरोध में बोलेंगे

जो सच–सच बोलेंगे, मारे जायेंगे

बर्दाश्त नहीं किया जाएगा कि किसी की कमीज़ हो

''उनकी'' कमीज़ से ज्यादा सफेद

कमीज़ पर जिनके दाग नहीं होंगे, मारे जायेंगे''[14]

4.5 **परिवार**

भारतीय संस्कृति में पारिवारिक व्यवस्था का बड़ा महत्व है। भारतीय समाज में परिवार एक बहुत बड़ी भूमिका निभाती है। वह व्यक्ति को बचपन से ही सह अस्तित्व, समभाव, प्रेम, दया, त्याग आदि लोकतांत्रिक मूल्यों को सिखाती है। परन्तु भूमंड़लीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न बाज़ारवादी संस्कृति ने भारतीय समाज की इस बरसों पुरानी व्यवस्था को क्षति पहुॅचाई है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में टूटते परिवार व्यक्ति को खोखला बना रही है। यह

व्यक्ति के बचपन को वर्जना और प्रताड़ना से, जवानी को स्पर्धा और असुरक्षा से तथा बुढ़ापे को एकाकीपन की अर्थहीनता में झोंक रही हैं। बाज़ारवादी संस्कृति से उत्पन्न आर्थिक होड़ का यह परिणाम है कि व्यक्ति अपने परिवार, देश एवं परिवेश से दूर होता जा रहा है। उसमें मौजूद उसकी सांस्कृतिक कड़ियॉ टूट रही है। रिश्तों की अहमियत घटती जा रही है। आज व्यक्ति अपने अलावा कुछ सोच ही नहीं पा रहा है। स्वार्थ की भावना उसकी प्रकृति बनती जा रही है। भारत की संस्कृति इन सब के विपरीत है। वह व्यक्ति में सकारात्मक भावना पैदा करती है। अतः इसका संरक्षण एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व बन गया है। कवि राजेश जोशी कहते हैं–

''इस तरह कभी कोई नहीं लौटा होगा

बचपन के उस पैतृक घर से

वहॉ बाबा थे, दादी थी, मॉ और पिता थे

लड़ते झगड़ते भी साथ–साथ रहते थे सारे भाई बहन

कोई न कोई हर वक्त बना ही रहता था घर में

.....

टूटने के क्रम में टूट चुका है बहुत कुछ, बहुत कुछ

अब इस घर में रहते हैं ईन मीन तीन जन

.....

कम हो रहा है मिलना जुलना

कम हो रही है लोगों की जान पहचान

सुख–दु:ख में भी पहले की तरह इकट्ठे नहीं होते लोग

तार से आ जाती है बधाई और शोक संदेश''[15]

4.6 **स्त्री स्वत्व**

मॉ, बेटी, बहन, पत्नी आदि स्त्री के विभिन्न रूपों तथा उनके संसार का चित्रण समकालीन कवियों ने किया है। भारत की संस्कृति में स्त्री का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्त्री को परिवार की रीढ़ की हड्डी मानी जाती है। समकालीन कवियों ने स्त्री के जीवन को, उसके आत्मसंघर्ष को आवाज़ दी है। पुरुष केन्द्रित समाज व्यवस्था के खिलाफ स्त्री की अस्मिता की सही पहचान इन कवियों ने किया है। यह हमारे लोकतांत्रिक समाजव्यवस्था का हिस्सा है जिसकी सदियों बाद सही पहचान हुई है। उदारवादी अर्थ प्रधान समाज में जहॉ नैतिक मूल्य बिकाउ हैं वहॉ स्त्री के स्वप्न–दु:स्वप्न, उसकी छोटी बड़ी इच्छाओं का लगभग अभूतपूर्व अंकन समकालीन कवियों ने किया है। आज की बाज़ारवादी व्यवस्था में स्त्री शोषण का साधन बन रही है। समकालीन कवियों ने स्त्री स्वतंत्रता के पक्ष में रूढ़िवादी परंपरा का विरोध किया है। समाज में उसके अधिकारों के लिए लड़ने का मुहिम छेड़ा है। स्त्री को सजग बनाना इनका लक्ष्य है। स्त्री के संघर्ष को इन कवियों ने बहुत बारीकि से अभिव्यक्त किया है। कवयित्री गगन गिल कहती हैं–

''दफ्तर में लड़कियॉ पास नहीं फटकने देतीं

इच्छाओं को, संभावनाओं को

चाहे लाख बार गुड़गुड़ करे, उधम मचायें

जमकर बैठी रहती हैं वे इच्छाओं के पिटाते पर

सूरज चमकता है उनके दफ्तरों के बाहर

मौसम बदलते हैं उनकी खिड़की से दूर

हवा नहीं छूती उन्हें कितने ही साल

पकते हैं बाल धूप के बिना ही

दफ्तरों में कैद लड़कियों के।''[16]

4.7 **लोक एवं जनजातीय संस्कृति**

भारत की संस्कृति का सबसे प्रबल और विविधोन्मुख रूप उसके लोकएवं जनजातीय संस्कृति का रहा है। यहॉ ईश्वर भी इंसानी रूप में लोगों के बीच रहकर उनके सुख–दुख में शरीक होता हैं। लोक एवं जनजातीय संस्कृति और साहित्य मानवता के, मानवीय संबंधों के, उसके व्यक्ति और समाज के प्रति प्रतिबद्धता के, प्रकृति से उसकी आत्मीय संबंधों के, सामाजिकता के राग अलापता है। यह शोषण, घोर वैयक्तिकता, स्वार्थ और छल के विपरीत है। उसका खण्डन करता है। समकालीन कविता इसी लोक की अभिव्यक्ति है।

इन कवियों ने लोक एवं जनजातीय जीवन के दुर्लभ दृश्यों को अपनी कविताओं में शब्दबद्ध किया है। लोक संस्कृति एवं भाषा के

मिठास को अभिव्यक्ति दी है। भूमंडलीकरण के फलस्वरूप देहाती परिवेश नष्ट होते जा रहे है। गॉव शहर बनता जा रहा है और मानवीय संबंधों में आत्मीयता, प्रेम तथा संवेदना नष्ट हो रही है।

सोवियत संघ के विघटन से हिन्दी के कवियों में विचारधारात्मक संकट का सामना करना पड़ा। साम्राज्यवाद की पहुॅच दुनिया के हर कोने पर हो गई थी। इसलिए समकालीन कवियों को नये सिरे से विचारधारा को परिभाषित करने और उसमें नये विमर्शों को जोड़कर साधारण जनता के संघर्षों के साथ कदम से कदम मिलाने के लिए अपने को तैयार रखने का उत्तरदायित्व था। इसके साथ ही छद्म प्रगतिशीलता एवं जनपक्षधरता का पर्दाफाश भी करना था। अतः ये कवि निरन्तर संघर्ष की राह पर है। समकालीन कविता भारत की संस्कृति के आधारभूत मूल्यों को, जो लोक एवं जनजातीय सामाजिकता का, हिस्सा है जिसके मूल तत्वों से भारत की संस्कृति का स्वरूप बना है, इसकी ढाल बनना समकालीन कविता का ध्येय है। यह मानवीय संवेदना को बचाए रखने के प्रयास में है। समकालीन कविता ने – ''समाज के हाशियों पर निवास करने वाली संवेदनाओं और सभ्यता की तथाकथित मुख्य भूमि के विडंबनपूर्ण संबंधों की पड़ताल तथा मूल जीवन तत्वों के आदिवास और आधुनिक बाज़ारी सभ्यता के अधिवास के जटिल संबंधों की रचना की है। उनका ऐतिहासिक महत्व यह है कि वे हमारे समाज और व्यापक राजनीति का सबसे बड़ा और अनिवार्य विमर्श बनाती है। अन्याय, क्रूरता, घृणा और असत्य के जटिल लीलालोक को चीरती ये कविताएं उस जीवन की कामना करती हैं जो ज़्यादा सरल, मानवीय और सच हो।''[17]

इनमें लोक एवं जनजातीय संवेदना का विस्तार पाया जाता है। बदलती सामाजिक परिस्थिति में कवियों ने इंसान के व्यक्तिगत एवं जातीय स्मृतियों की झॉकि प्रस्तुत कर बाज़ार के कुतंत्र से बिगड़ते मानवीय मूल्यों को बचाने की कोशिश की है। कवि मदन कश्यप कहते हैं–

''नहीं भूलती है

जेठ की पहली बारिश के बाद

अकुलायी धरती से उठने वाली

बह सोंधी–सोंधी सी गंध

नदियों, पहाड़ों, और जंगलों को पार करते हुए

जाने कैसे चली आती है मुझ तक

और खिच्चे दानों में भरते दूध की तरह

मेरी आत्मा में भरती चली जाती है।''[18]

लोक एवं जनजातीय चेतना को शब्दबद्ध करती ये कविताएँ आधुनिक समाज के कैंवास से मिटते मानवीय मूल्यों को उजागर करने का प्रयास करती हैं। भारत की संस्कृति अपने मूल में देहाती है। उसका प्रकृति से गहरा संबंध है। इन्हीं तत्वों को समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं के ज़रिए समाज तक पहुॅचाने का प्रयास किया है। आर्थिक तंगी देश के निम्न वर्ग पर कठोराघात किया है। किसान मज़दूर बन शहरों की ओर चल पड़े। शहरों में बस रहे इन्हीं मध्य एवं निम्न वर्ग के

लिए अपना गॉव, परिवार, प्रकृति एवं रिश्ते नाते केवल खयालों में ही बचे रह गए हैं। कवि स्वप्निल श्रीवास्तव कहते हैं–

''दिल्ली बम्बई भोपाल की यात्राऍ

करते हुए मैंने पुरबियों को देखा है

मैली कुचैली कठरी की तरह

रेल की सीट या फर्श पर

एक जगह बटुरे हुए भकुआये

गॉव–गढ़ी की बातें करते हैं

मेहरारू के हाथ की पोयी हुई रोटी में

देखते हुए अपना खेत खलिहान

मॉ–बाप की याद में

ढ़कर–ढ़कर रोते हुए

अक्सर मुझे अपना ही चेहरा

याद आता है

याद आती है अपनी ही ऑख।''[19]

हमारी जनसंस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उसकी मानव एवं पर्यावरणधर्मिता है। यह संस्कृति मनुष्य और प्रकृति के बीच के सामंजस्य के हजारों साल पुरानी नींव पर खड़ी है और इसमें हम सबकी सम्मिलित

आकांक्षाओं का समावेश है। यही कारण रहा है कि अब तक यह उपनिवेशी शक्तियों के हमले से पूरी तरह नष्ट नहीं हुआ है। उसकी इस निरंतर लड़ाई को समकालीन कविता ने आवाज़ दी है।

4.8 अपसंस्कृति के खिलाफ

भारत की संस्कृति की व्यापकता एवं भिन्नता, उसके स्वरूप निर्धारण में सहायक सिद्ध होती है। इसी वैविध्य के रहते, इसमें रूढ़ीवादी तत्व अपनी पैठ जमा नहीं पाती और यही भारत की संस्कृति का मुख्य आधार है। वह खण्डित एवं मुक्त है। उसकी आत्मा लोक जीवन में बसती है जो किसी भी तरह की संस्थागत धार्मिक ढांचे को नकारती हैं परन्तु भूमंडलीकरण से उत्पन्न बाज़ारवाद एवं सांप्रदायिक शक्तियों के उभार ने इसके अस्तित्व पर प्रहार किया है। इस संकट की स्थिति में समकालीन कविता एक ऐसी अभिव्यक्ति बनकर सामने आई है जो इसकी विविधता को, इसके लोक पक्ष को, इसके लोकतांत्रिक स्वभाव को अभिव्यक्त करने का साहस उठाया है।

समकालीन कविता का मूल्य बोध भारत के समाज और संस्कृति का मूल्य बोध हैं। सांस्कृतिक संकट के इस समय में यह ध्यातव्य है कि – ''विभिन्न संस्कृतियों के विकास में भिन्नता के कारण विभिन्न वस्तुओं के प्रति उनकी भावना में भिन्नता है। इनमें प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति की संभावना के सीमाहीन होने के कारण, यह संभावना बनती है कि विवादों को अतिरंजित करके विखलाया जाए और जिसमें दूसरे समूह या आराध्यदेव को अत्यधिक निकृष्ट बताया जाए और अपने समूह या राष्ट्र को सर्वश्रेष्ठ बताया जाए। दूसरी यह कि उपभोक्तावादी संस्कृति

को सर्वश्रेष्ठ मानकर बाकी दुनिया पर इसे आरोपित किया जा रहा है।''[20] इस प्रक्रिया में संस्कृतियों की विविधता लुप्त होगी या वह भ्रष्ट हो जाएगी जिससे अपसंस्कृति का निर्माण होगा। इस सांस्कृतिक आधिपत्य से आत्मनिर्भरता नष्ट होती है एवं मूल्यच्युति होती है। ''पश्चिम की मौजूदा संस्कृति में साम्राज्यवादी तत्व हैं जो कला, साहित्य, संगीत और जीवन के अन्य क्षेत्रों से भारतीय परंपराओं को निष्कासित कर उन पर हावी हो रही है। यह संस्कृति बाज़ार की ज़रूरतों के अनुसार विकसित हुई है और विज्ञापन और प्रतिस्पर्धा इसका मूलतत्व है।''[21]

अतः इस संदर्भ में समकालीन कविता वैज्ञानिक समझ और संवेदना को साथ–साथ लिए संकट की इस स्थिति से जूझती है। वह मृत्यु की पहचान तो कराती है पर उसे नियति नहीं मानती। वह जीवन को उसकी विविधता में देखने का प्रयास करती है। कवि स्वप्निल श्रीवास्तव कहते हैं–

''यह ढ़िबरी नहीं

अंधेरे के पहाड़ को काटती हुई

कुल्हाड़ी है

ताख पर नहीं घर के कंधे पर

जतन से रखी हुई है

जिस दिन शुरू हुआ था

यह घर

उस दिन से गरीबी और अंधेरे के

खिलाफ जल रही है।''[22]

और एक जगह कवि स्वप्निल श्रीवास्तव अपसंस्कृति के खिलाफ भारतीय संस्कृति की आशावादी दृष्टिकोण को उजागर करते हैं–

''वसंत शुरू होता है

हम फूलों के बारे में

सोचते हैं

जिनके रंग आग की तरह

सुर्ख होते हैं

हम देखते हैं

मौसम के समस्त विरोधों के

बवजूद उनका खिलना।''[23]

इसलिए इन कवियों ने भारतीय परंपरा में पुराने समय से चले आ रहे साधारण जनता की भाषा एवं शब्दों का प्रयोग किया है क्योंकि भाषा एवं शब्द संस्कृति का हिस्सा है और यहीं से समकालीन कविता ने संघर्ष की ऊर्जा पाई है। रचनात्मक कार्रवाई का मूल चरित्र हत्या और आत्महत्या का विरोधी है। इसके मूल्य फासिस्ट मनोवृत्ति से अलग है। किसी भी संस्कृति पर आक्रमण से उसका पहला असर उसकी भाषा पर पड़ता है। भाषा किसी भी संस्कृति के तत्वों का वाहक होता है।

नवउदारवादी शक्तियों का प्रयास भाषा और विचारों को भूमंडलीय अर्थव्यवस्था के अनुरूप बनाना तथा उनमें विद्वेष, युद्ध की भावना, स्वार्थ, आदि को पैदा करना होता है। अतः समकालीन कविता इन तत्वों को समाज के सामने प्रस्तुत करती है और इनसे अलग एक अच्छा विकल्प ढूँढ निकालने का प्रयास कर रही है। कवि भगवत रावत कहते हैं–

''मुझे एक भाषा चाहिए

उसके लिए

नहीं–नहीं

उसकी ऑखों के लिए

जो उसकी ऑख को ऑख कहे

और जिसका अर्थ

सिर्फ ऑख हो।''[24]

4.9 **अहिंसा**

भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण मूल्य है– अहिंसा। हमारे राष्टपिता महात्मा गॉधी जी ने भारत की स्वतंत्रता संग्राम में अहिंसा के सहारे पूरे विश्व को शांति का संदेश दिया। अहिंसा का मूल भाव एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य को मन, वचन और कर्म से हानि न पहूँचाना है। यह मूल्य भारत की संस्कृति के मूलभूत मूल्यों में से एक है। समकालीन कलुषित समय में इसकी महत्ता और बढ़ गई है। समकालीन कविता ने साम्राज्यवादी शक्तियों की युद्ध–प्रियता के खिलाफ अहिंसा के मूल्य को

अपनी कविता में शामिल कर मानव समूह को हिंसा के खिलाफ एक प्रतिरोध का विकल्प दिया है। कवि ज्ञानेन्द्रपति कहते हैं–

''एक शक्तिशाली राष्ट के सिरमौर !

तुम्हारी उल्लासित कल्पनाओं में

पृथ्वी तुम्हारी उँगलियों पर नाचता क्रिडा–कंदुक

–ठीक वैसा जैसा 'दी ग्रेट डिक्टेटर' में

चैप्लिन ने दिखाया था

तुम उसे राष्ट की शक्ति–साधना कहते हो

.....

मैं एक कवि

पृथ्वी–सूक्त के रचयिता का वंशज

.....

नहीं तुम्हारा मर्म कॅपाउँ, नहीं तुम्हारा हृदय दुखउ–गानेवाले कवि का वंशज

.....

पृथ्वी पर चलकर, उसे रौंदने के लिए

क्षमा मॉगनेवाले विनतमाथ कवि का उन्नतभाल वंशज !''[25]

4.10 **विश्वशांति, विश्वबंधुत्व एवं लोकमंगल**

ये भारतीय संस्कृति के महान संदेश हैं। भारतीय संस्कृति ने विश्व को एक कुटुम्ब के रूप में लेकर उसमें बसने वाली सभी प्राणियों व वनस्पतियों का कल्याण की कामना की है। 'खुद जियो और औरों को भी जीने दो' वाली विचार प्रणाली भारतीय संस्कृति ने स्वीकारा है।दूसरों की भलाई इसका लक्ष्य है। दूसरों को सहायता प्रदान करना भारतीय संस्कृति का मुख्य ध्येय है। ये मूल्य भारतीय संस्कृति के तहत उत्तम माना जाता है और यही संस्कृति की आधारशिला है।भारत की संस्कृति प्राप्त संपत्ति को त्यागपूर्वक उपभोग करना तथा दूसरों की धनसंपत्ति की लिप्सा नहीं करना सिखाती है। भारतीय संस्कृति उदार एवं समन्वयकारी दृष्टिकोण को मानने वाली संस्कृति है। इसी भावना ने 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की भावना को पैदा किया, इसी ने भारतीय संस्कृति में लचीलापन और सहनशक्ति को पैदा किया। 'वसुधैवकुटुम्बकम्' पश्चिम के भूमंडलीकरण का एक बेहत्तर विकल्प है। कवि ज्ञानेन्द्रपति विश्वबंधुत्व और विश्वकल्याण की भावना के विरुद्ध जन साधारण पर हो रहे अत्याचार एवं शोषण के खिलाफ अपनी कविता में प्रतिक्रिया दर्ज करते हैं। वे कहते हैं–

''लेकिन मैं जानता हूँ

पाषाण युग से भी पीछे

हैं वे पाषाण–हृदय, जो

अत्याधुनिकों में अग्रगामी गिनते हैं खुद को

उनको मानव होना शेष अभी।''[26]

4.11 **स्वदेशीकरण का आग्रह**

भूमंडलीकरण के फलस्वरूप विश्वभर की संस्कृति का कई स्तर पर आदान–प्रदान होता है। इसके परिणामस्वरूप सकारात्मक एवं नकारात्मक विचार भी शामिल होते हैं। भारतीय संस्कृति गुणग्राहक संस्कृति है। परंतु नवउपनिवेशी शक्तियॉ भारत के समाज और संस्कृति को अपने स्वार्थ लाभ के लिए प्रयुक्त कर रही हैं। नवउपनिवेशी शक्तियॉ अप्रत्यक्ष रूप से देश की जनता के लिए संकट बन रही हैं। वह लोगों के मन में नकारात्मक प्रभाव ला रही हैं। अतः कवियों को अधिक जागरूक होने का समय है। भ्रष्टाचार, शोषण आदि से जनता का मन पहले से मूल्यों व नैतिकता से हट गया था। 1980 के बाद की समकालीन कविता का मुख्य ध्येय प्रतिरोध का है। वह नष्ट हो रहे मूल्यों व नैतिकता को बचाए रखने में जुटा है। वह भारत की संस्कृति के मूल तत्वों को बचाए रखना चाहती है। इसके लिए वह व्यक्ति के व्यक्तित्व, उसका परिवार, उसके संस्कार आदि की पड़ताल करता हैजिसे इंसान ने अपने स्वार्थ और प्रगति के मार्फत पीछे छोड़ दिया है। अपने मूल की तरफ वापसी को यह कविताएं दिखाती हैं। ''आठवें दशक में लोक का खुरदुरा जीवन, जनजातीय मिथकों के साथ विश्वसनीय व्यवहार, लोक और आधुनिकता के द्वन्द्व के साथ विस्थापन की पीड़ा का अलग चेहरा था।''[27]भारत की संस्कृति शुरु से जनवादी एवं लोकतांत्रिक रही है। इसने रूढ़ परंपरा को तोड़ मरोड़कर उसे जन सामान्य एवं लोकप्रिय संस्कृति का हिस्सा बनाया है। चाहे वह सामाजिक हो, धार्मिक हो या भाषागत हो, सर्वजन ग्राह्य बनाया है।

आज नवऔपनिवेशिक शक्तियॉ हमारे दिल–ओ–दिमाग में ज़हर घोल रही हैं। भारत की संस्कृति को अपसंस्कृति बना रही है। अतः समकालीन कवियों ने राजनीतिक विषयों से हटकर लोक जीवन, प्रकृति बोध, रागात्मक संवेदना, घर परिवार, समाज के आत्मीय विवरण, युगबोध, सत्ता के उत्पीड़न जैसे विषयक रचनाएॅ करने लगे।नवउपनिवेशी शक्तियों के छल का पर्दाफाश करना कवि का मुख्य लक्ष्य बन गया। कवि राजेश जोशी कहते हैं–

''जब तक मैं एक अपील लिखता हूॅ

आग लग चुकी होती है सारे शहर में

हिज्जे ठीक करता हूॅ जब तक अपील के

कफ्र्यू का ऐलान करती घूमने लगती है गाडी

अपील छपने जाती है जब तक प्रेस में

दुकानें जल चुकी होती है

मारे जा चुके होते हैं लोग''[28]

नवउपनिवेशी शक्तियॉ व उनके द्वारा रचित उपभोक्तावादी संस्कृति भारत की जनसंस्कृति का दमन कर, उनको नष्ट करने का प्रयास कर रही हैं। यह वह जनसंस्कृतियॉ हैं जो कई सदियों तक अपनी अस्मिता को कायम रखा है। कवि उदय प्रकाश कहते हैं–

''इस समय

जब कि कोई भी वाक्य पहले का अर्थ नहीं देता

मैं कहना चाहता हूँ

'मैं घर जाना चाहता हूँ'

.....

इस समय

जब कि 'घर' का वह अर्थ नहीं रहा

जब कि मैं बूढ़ा हो रहा हूँ

जब कि शीशम के पेड़ नहीं रहे और

सरौतियां और पहले वाली बूढ़िया नहीं रहीं

इस समय

जब कि बच्चे लालटेन के चित्र किताबों में देख रहे हैं।''[29]

4.12 **मूल्य संक्रमण**

सांस्कृतिक अस्मिता किसी भी देश की पूँजी है। हर एक देश की अपनी संस्कृति होती है। भारत दुनिया का एकमात्र ऐसा देश है जहाँ अनेक संस्कृतियाँ मौजूद हैं। परन्तु इन विभिन्न संस्कृतियों को एक धागे में पिरोने वाली कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएँ हैं जो भारत को विविधता में

एकता का दर्जा देती हैं। भारत की सांस्कृतिक अस्मिता को बनाए रखना ही यहॉ के रचनाकारों का प्रयास रहा है। सांस्कृतिक अस्मिता किसी भी देश की पहचान है। वहॉ की जनता के रहन–सहन, कार्य व्यापार, सामाजिकता आदि घटक इसका निर्धारण करती है। समकालीन कविता ने भारत के लोक व अंचल की भाषा, बोली, संगीत आदि को सुरक्षित रखने के पूरे प्रयास में है। भारत की संस्कृति की विशेषताएँ जैसे गत्यात्मकता, प्रगतिशीलता, समन्वयशीलता, सहअस्तित्व, धर्मनिरपेक्षता, अहिंसा, परिवर्तनशीलता आदि गुणों को बनाए रखना आवश्यक है। यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है तथा यही भारतीय समाज को विश्व के अन्य समाज से पृथक करती है। समकालीन कविता इसके लिए निरंतर संघर्ष कर रही है।

समकालीन बाज़ारवादी समाज व्यवस्था मनुष्य का मनुष्य से तथा मनुष्य का प्रकृति से आत्मिक संबंध को विकृत कर रही है। संयुक्त परिवार के टूटने से प्रत्येक व्यक्ति बहुत अधिक आत्मकेन्द्रित रहने लगा। स्वार्थ की भावना आम स्वभाव का हिस्सा बन गई। समाज में अर्थ को सब मूल्यों से बढ़कर समझने लगा। भ्रष्ट राजनीति के परिणामस्वरूप आम जनता का शोषण कर भ्रष्ट नेताओं ने अपनी जेबें काले धन से भर लिया। जनता को वोट बैंक में तब्दील करने के लिए जाति एवं धर्म के नाम पर विभक्त किया। देश में शोषण, बेरोज़गारी, आदि पनपने लगी। इसलिए समकालीन कवियों का समाज के प्रति उत्तरदायित्व और बढ़ गया। उन्हें भारतीय संस्कृति के सकारात्मक पक्षों को बचाए रखना था। अतः उन्होंने अपनी कविताओं के ज़रिए इस साम्राज्यवादी शोषण तंत्र का सामना किया। कवि चंद्रकांत देवताले कहते हैं –

''मैं जी रहा हूँ मौत के खबरों के भीतर

चल रहा हूँ हत्यारे हिंसक समय में

फिर मरने का अफसोस क्यों होगा मुझे

मुझे याद है दिया–बत्ती के वक्त

मॉ के साथ प्रार्थना के लिए खड़ा हो जाता था

अब उसी वक्त घरों में भून दिया जाता है

औरतों और बच्चों को।''[30]

सांप्रदायिकता भारतीय समाज का अभिशाप है। यह भारतीय धर्म–निरपेक्ष मूल्यों के खिलाफ है। सांप्रदायिक शक्तियॉ इस समाजवादी भारतीय समाज को बांटने का प्रयास कर रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी यहॉ की सरकार जाति प्रथा को जड़ से उखाड़ नहीं पाई। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं ने सांप्रदायिकता का घोर विरोध किया है। वे धर्म एवं जाति को शासन प्रणाली और राजनीति से पृथक रखना चाहते थे। परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् भी सांप्रदायिक शक्तियॉ क्षीण नहीं हुई। वह और अधिक बलवान होती गई। समकालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में सांप्रदायिकता एक बड़ी चुनौती के रूप में विद्यमान है। इसके साथ, भ्रष्टाचार, शोषण आदि ने साधारण जन की स्थिति को बदत्तर बनाया है।

1980 के बाद की हिन्दी कविता में सांस्कृतिक संवाद कई रूपों में हुआ है। धर्मनिरपेक्षता, जातीय अस्मिता का प्रश्न, शहर और गॉव की

मानसिकता का अंकन, आदि। इन सब का मुख्य आधार था – अपने मूल की तरफ लौटना। शोषण, हिंसा और नफरत के बीच इंसानियत को बचाए रखना। इंसान की नैतिकता को जगाना और उसे इस अपसंस्कृति से बचाना।

कविता हमेशा से व्यवस्था विरोधी रही है। वह व्यवस्था जो आम आदमी को कठघरे में खड़ा करती है, उसके आवाज़ को दबाती है। आज कोई भी व्यवस्था बाज़ार नियंत्रित है। वह मनुष्य की संवेदना को, उसकी आकांक्षाओं को, उसकी भाषा को एकरूपता देने की कोशिश कर रहा है। उसे भ्रष्ट बनाकर अपना गुलाम बनाना चाहती है। समकालीन कविता इस मूल्यच्युति के खिलाफ प्रतिरोध का दूसरा नाम है। समकालीन कविता ''रचना–विरोधी सत्तातंत्र के बरक्स उसका मूल काम, उसके जीवन को बचाये रखना है। मनुष्य पर जितने भी भौतिक–सांस्कृतिक–मानसिक और आत्मिक आक्रमण है, उन्हें झेलते हुए उनका प्रतिरोध करते रहना उसकी अंतर्निहित शर्त है।''[31] अतः समाज के प्रति कवि और कविता का उत्तरदायित्व बहुत बड़ा होता है।

4.13 **बाज़ारवाद का प्रतिरोध**

समकालीन कविता हाशिएकृत जनविभाग का स्वर है। वह मनुष्य और प्रकृति के खिलाफ हो रही बाज़ारवादी षड्यंत्र के खिलाफ एक प्रतिरोध है। वह पीड़ित एवं शोषित वर्गों की उदासीन एवं करुणा भरी दुनिया से आगे निकलकर उन्हें शोषण के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान करता है। यह आम लोगों के जीवन में व्याप्त अनिश्चय और संदेह से भरे समय में पराजित एवं हताश सच और झूठ के इशारे पर नाच रही

दुनिया का चित्रण करती है। यह झूठ पूंजीवादी आश्वासनों का है। बाज़ार के विश्वासघात का है। भूमण्डलीकरण की आड़ में चल रही हरकतों का है। कवि इस बदलती परिस्थिति से अच्छी तरह वाकिफ हैं। वे इन सब के बीच सपना देखते हैं। एक ऐसा सपना जहॉ मनुष्य को मनुष्य की तरह देखा जाए तथा उसके आत्मिक संबंधों को उसी सच्चाई से ग्रहण किया जाए। क्रूरता और अमानवीयता के ऐन बीच वह भले ही वक्त और भाषा से परे जीवन की हलचल अनुभव करते हैं; मगर करते अवश्य हैं और यही वह आशालोक है जिसमें रहते हुए वे प्रेम के अप्रतिम आवेग को अनुभव करते हैं। समकालीन कवि उपभोक्तावादी संस्कृति के नकारात्मक प्रभाव से पाठकों को आगाह करते हैं। वे पूॅजीवादी व शासक वर्ग के बीच के नाजायज़ संबंध का पर्दाफाश करते हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति अपसंस्कृति का निर्माण कर रही है जो व्यक्ति को समाज से दूर अधिक स्वार्थी बनाता है। बाज़ार के इस अवमूल्यन के खिलाफ समकालीन कवि प्रतिरोध खडा करते हैं। कवि कुमार विकल कहते हैं–

''आप मेरे खिलाफ साजिश करेंगे तो मेरा क्या कर लेंगे?

इस सफर पर निकलने से पहले

मैंने अपना स्वप्न घर

ऑखों से निकालकर

अपनी हथेली पर धर किया था

और एक फैसला कर लिया था

कि मेरे पास खोने के लिए सिर्फ एक उनींदी दुनिया है

जबकि आपके पास नींद है

नींद के महल हैं

सुरक्षा की ज़ंज़ीरें हैं।''[32]

समकालीन कविता ने सबसे पहले जिस विचार को जीवन से जोड़ा वह विचार था गरीब, मज़दूर, किसान, दलित, स्त्री, आदिवासी के सुख–दुख से जुड़ना। यह समाज के वह लोग हैं जो हाशिए पर हैं। भ्रष्ट राजनेता, सूदखोर, पूँजीपति इनका शोषण करते हैं। इन शोषित व पीड़ित जनों की आवाज़ को ही समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में मुख्य रूप से दर्ज किया है। बज़ारवादी संस्कृति के फलस्वरूप शहरी सभ्यता के ताम–झाम में फंसे मध्यवर्ग के आत्मबोध को उसकी मिट्टी से जोड़ने का प्रयास इन कवियों ने किया है। समकालीन कविता संघर्षरत इंसान का प्रतिबिम्ब है। उसकी आत्मीयता को हमेशा जगाकर रखने के लिए यह कविता हमेशा संलग्न है।कवि अरुण कमल कहते हैं–

''बिल्कुल निहत्था पर हाथ बिना ऊपर उठाये

मैं हत्यारों से मिलने जाना चाहता हूँ

लाल मखमल की खाली म्यान लिये

आबनूस की नक्कासीदार बेंट लिये–

जिस तलवार ने सैकड़ों कत्ल किये

उस पर भी कितनी सुन्दर नक्काशी थी–

केवल शब्दों का फाहा लिये

जाना चाहता हूँ, उसकी तरफ से

जो सबसे कमजोर है''[33]

''वह भूमंडलीयता के विरुद्ध ठोसअनुभव प्रसंगों को उभारती है और सांप्रदायिकता के विरुद्ध मानवीय संवेदना को उभारती है। वह आशावादी भले न हो, पर आलोचनात्मक है और यह आलोचना उसके जनतांत्रिक विवेक का सूचक है। वह पूर्ववर्ती परंपराओं के प्रति ग्रहणशील है और समसामायिक जीवन पर पड़ने वाले वैश्विक दबावों के प्रति संवेदनशील है। इसलिए वह तीसरी दुनिया के प्रतिरोध–साहित्य का मूल्यवान अंश है।''[34] समकालीन कविता इंसान को शोषण के विरुद्ध आत्म–चेतन बनाने के संघर्ष में है। वह आम जनता के पक्ष में लड़ना चाहती है जो सालों से न्याय की रोशनी को तलाश रही है।

देश का रुख अधिक पूँजीवादी देशों की ओर हो रहा है। भारतीय समाज इस बदलती नीति का शिकार हो रहा था। व्यवस्था विरोधी शक्तियॉ क्षीण हो रही है। समाज धर्म एवं जाति के नाम पर खण्डित हो रहा है। किसान, मज़दूर, आदिवासी हाशिए पर चले गए। किसान आत्महत्याएं बढ़ने लगी, आदिवासी अपनी भूमि को छोड़ शहरों में मज़दूरी करने के लिए बाध्य हो गए। विकास के नाम पर बड़ी संख्या में किसान, आदिवासी जनों को विस्थापन की समस्या झेलनी पड़ रही है। प्राकृतिक संपदा की लूट मची हुई है। नवउपनिवेशवाद का प्रभाव समाज के हर

स्तर पर पड़ने लगा। हर चीज़ का मूल्य निर्धारण आर्थिक तौर पर होने लगा। इसने एक उपभोगवादी संस्कृति का निर्माण किया। बाज़ार आदमी के शोषण का ज़रिया बन गया। कवि स्वप्निल श्रीवास्तव कहते हैं–

''हमारे समय में धीरे धीरे

गायब हो रही है बेचैनी

गुस्सा भी कम आता है

.....

शरीर में अनुपस्थित रहती है

आत्मा

क्या हमने चाहा था ऐसा जीवन?

जिसमें हो बाज़ार की गंध

और झूठ को सच की तरह

गाये जाने की कोशिश

.....

मौत का कहीं नहीं होता

उल्लेख।''[35]

समकालीन कविता अपने विकास क्रम में हमेशा सामान्य जन के संघर्ष के साथ रहा है और आज भी उसकी यात्रा निरंतर चलती जा रही

है। भारत की संस्कृति के स्वरूप को कविताओं में चित्रित एवं आत्मसात करने के लक्ष्य से कवयों ने भारत के लोक पक्ष को महत्व दिया है क्योंकि भूमंडलीकरण के फलस्वरूप नवसाम्राज्यवादी शक्तियों के शोषण तंत्र एवं विघटनवादी सांप्रदायिक शक्तियों के मानव विरोधी कार्रवाई के विरुद्ध उन्हें प्रतिरोध का दीवार खड़ा करना था। समकालीन कविता का संघर्ष जन सामान्य का संघर्ष है। वह बाज़ार के यथार्थ को खोलकर रखती है। कवि मंगलेश डबराल कहते हैं–

''जो लोग सिर्फ सहमी–सी आंखों से देखते रहते हैं

वे भी जानते हैं कि यहां रखी चीज़ों का कोई विकल्प नहीं है

फ़र्क सिर्फ यह है कि जो कुछ आम तौर पर

जिस तरह दिखता है वह उस तरह नहीं होता

यह बाज़ार का एक ठोस अध्यात्मिक आधार है

इसीलिए चमत्कारों का उत्पादन सबसे बड़ा व्यापार है।''[36]

भारत की संस्कृति उसके वैविध्य के लिए मशहूर है। इसकी विविधता जाति एवं धर्म से लेकर प्रत्येक सांस्कृतिक अस्मिता तक फैला है। आधुनिक संदर्भ में उसकी गहराई और बड़ी है। सांस्कृतिक अस्मिता आज और अधिक मुखर हो गई हैं। अतः समकालीन कविता ने इन विविधोन्मुखी जीवन संदर्भों को प्रस्तुत करने का भरपूर प्रयास किया है। इसने साधारण जनता के संघर्ष की चुनौतियों को, छोटे–बड़े मानवीय प्रसंगों को, खण्डित समाज में मूल्य एवं नैतिकता का स्थान, सांस्कृतिक

बोध को, अतीत के राग और वर्तमान की विडम्बना को तथा पूँजीवादी शोषण तंत्र को बारीकी से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।बाज़ार की अहमियत आदमी से बढ़कर हो गई है। कवि अरुण कमल कहते हैं –

''कौन बचा है जिसके आगे

इन हाथों को नहीं पसारा

यह अनाज, जो बदल रक्त में

टहल रहा है तन के कोने कोने

.....

सब उधार का, माँगा–चाहा

नमक–तेल, हींग–हल्दी तक

सब कर्जे का

.....

अपना क्या है इस जीवन में

सब तो लिया उधार

सारा लोहा उन लोगों का

अपनी केवल धार।''[37]

यह समय भूमंडलीकरण का है। बाज़ार और सत्ता के गठबंधन ने शोषण का नया रास्ता खोल दिया। अतः समकालीन कविता अपने को

समाज के विभिन्न स्तरों पर हो रहे संघर्ष के साथ जोड़ रही है। भूमंडलीकरण के फलस्वरूप मानवीय मूल्यों के क्षरण का चित्रण इस समय के कवियों ने किया है। समकालीन कविता, ''प्रतिरोध के परिप्रेक्ष्य में अपने समय, समाज एवं जीवन को देखते हुए इस अत्यन्त मिक्स्ड एवं हाईब्रिड समय में अपने दोस्त और दुश्मन की पहचान के संकट से गुज़रते हुए भी अपनी पैनी दृष्टि से गरीब, मज़लूम, दलितों एवं स्त्रियों के परिवर्तनकारी राजनीति को मज़बूत करती हुई, सतत् रूप से अपनी संवेदनात्मकता का विकास कर रही है।''[38]इन कविताओं में समाज के आर्थिक संबंधों की अपेक्षा व्यक्तिगत संबंधों के प्रति जागरूकता अधिक दिखाई देती है। इन कवियों ने अपनी को ऑचलिक, स्थानीय अथवा जनपदीय भूगोल एवं लोक संवेदना से संपृक्त किया हैं। इन कवियों के लिए अपने जड़ की ओर या लोक की ओर लौटना संकल्प, उम्मीद व स्वप्न की तरह है। समकालीन बाज़ारोन्मुख समाज में आम आदमी के व्यक्तित्व में आने वाले परिवर्तन, उसमें उत्पन्न होने वाली असुरक्षा का भाव एवं उसकी तनावग्रस्तता का चित्रण इस समय के कविताओं में मिलते हैं। आज साधारण आदमी जीवन के हर स्तर पर संघर्षरत हैं। उसके संघर्ष को दिशा देने व इसकी अभिव्यक्ति के रूप में समकालीन कविता हमेशा आगे आई है। सामाजिकता, लोक सजगता और संघर्ष की भावना – ये समकालीन कविता का मुख्य ध्येय हैं।

हमारा राजनीतिक ढॉचा समाज को तेज़ी से ऐसे अंधकार की ओर ले जा रहा है जहॉ सिर्फ ताकत की तूती बोलती है। यह बाज़ारवाद का परिणाम है। अतः कवि का यह दायित्व होता है कि अपनी कविताओं में संवेदनशीलता एवं सच्चाई को बरकरार रखे। भ्रष्ट राजनेता समाज के

उत्पीड़न को सहने की क्षमता की परीक्षा लेती हैं। यह धीरे–धीरे समाज में विकृति, उत्पीड़न और ताकत के आतंक को जज़्ब कराने का प्रयास करता है। यह क्रोध, हिंसा और नफरत को फैला रहे हैं। खून खराबे को सामान्य रूप देने की कोशिश में हैं। सांप्रदायिकता इसी का परिणाम है। अहिंसा जैसे मूल्यों का अनुसरण कर भारत को स्वतंत्रता हासिल हुई, परन्तु इन मूल्यों को हमने कौड़ियों के दाम बेच डाला। यह सांप्रदायिकता व धर्म आधारित राष्ट्रीयता भी उसी नवसाम्राज्यवाद का हिस्सा है। यह संपूर्ण इंसानियत का शत्रु है। कवि यतीन्द्र मिश्र कहते हैं–

''अयोध्या का राजसिंहासन सूना है

कहीं कोई भरत नहीं दिखता

जिसे संकल्पित पादुका की दरकार हो

राम बेहद व्यथित

आज वैसी नहीं रही अयोध्या

मर्यादा की लक्ष्मण रेखा

भक्तों ने ही कर दी पार

सायास

साधिकार

.....

इस युद्धसंधि पर

अयोध्या योद्धाओं की भूमि बनी।''[39]

सरकार बाज़ार संबंधी नीतियों को लागू कर देश की उन्नति का ढोंग रचती है। यह सीमा शुल्कों को कम कर अन्तर्राष्ट्रीय ब्रैण्डों के देश में प्रवेश को संवैधानिक बनाती है। कटौतियों के रद्द किए जाने के पीछे बड़े उद्योगपतियों के निहित स्वार्थ की रक्षा होती है। सरकारी संस्थानों के निजीकरण का वास्तविक उद्देश्य अपने मुनाफे हेतु निजी कंपनियों को कम दाम में बेचकर करोड़ों रूपये हासिल करना होता है। इस झूठ को सच का पोशाक पहनाने में वैश्वीकरण के पैरवीकार अच्छी तरह जानते हैं। इस तरह की परिस्थिति के रहते भारत जैसे बहुभाषी, बहुजातीय, देशों के लोगों का यह शिकार करती है। यह समाज, जाति, भाषा, परिवार एवं व्यक्तियों के बीच दरारें उत्पन्न करती हैं। यह सामाजिक मूल्यों को जर्जर बनाती है। उसे नकारात्मक ढंग से परिवर्तित करती है। यह भारत जैसे विविधोन्मुखी समाज एवं सामाजिक मूल्यों वाले देश के लिए अत्यंत खतरा है। यह एक देश की स्थानीय संस्कृति को खोखला बनाती है। कवि चंद्रकांत देवताले कहते हैं–

''इस साजिश को मैं पहचानता हूँ

अपनी कविता की कपट–बेधी ऑखों से

क्योंकि कपट से कपट के बीच धॅसी हुई यह भाषा

सुख के पहाड़ की चोटी तक पहुँचाती है

हड्डियों को सपना दिखाती है तपती धूप में

एक क्षण बाद

गायब पहाड़

क्षत–विक्षत सपना

जस की तस हड्डियॉ

यह भाषा चुपके–चुपके

आदमी का मॉस खाती है।''[40]

उपभोक्ता बाजार की पहुँच का यह भयावह विस्तार जहॉ एक ओर बाज़ार की पारंपरिक सीमाओं को तोड़कर हर तरफ एक जैसा ब्रैण्ड संस्कृति स्थापित कर रहा है वहीं दूसरी ओर सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने समाज और संस्कृति के पुराने समीकरणों को असंगत बनाना शुरू कर दिया है। 1980 के बाद सूचना जगत में एक ऐसी क्रांति आई कि परंपरागत मान्यताएं एवं सांस्कृतिक ज़रूरतों में भारी बदलाव आया। वैश्वीकरण के कुछ तत्वों ने जगहों की बीच की दूरियां तो कम कर दी परन्तु इंसान की भावना को विभक्त कर दिया। संबंधों में दरारें आ गईं। इसने बहुभाषी व बहुप्रादेशिक परिवेशों में ध्रुवीकरण पैदा किया है। समकालीन कविता ने मनुष्य विरोधी स्थितियों, आम लोगों पर होने वाली यातनाएँ, बाज़ार के छल–छद्म, शोषित लोगों की पीड़ा, जन सामान्य की बेहतर जीवन के प्रति अटूट आस्था आदि का चित्रण बहुत बारीकी से किया है। यह मानव मुक्ति का दस्तावेज़ है। कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं–

''वे धीरे–धीरे बिना कुछ कहे

हथिया लेंगे तुम्हारी जगह।

हर लेंगे तुम्हारे वचन,

तुम्हारा सक्तकल्प कर

तुम्हें अपनी अस्थियों के अंधेरे में

चुपचाप छोड़कर

दिव्य निर्मम आभा से दीप्त

वे आगे चले जायेंगे।''[41]

बाज़ार द्वारा आम आदमी के शोषण को यहॉ चित्रित किया गया है। समकालीन कविता अपने समय, समाज, व्यवस्था, राजनीति, विचारधारा, परिवार और व्यक्ति की चेतना में फैले अंधेरे के विभिन्न रूपों की खोज और पहचान हैं।कवि बलदेव वंशी कहते हैं–

''स्तब्ध पुतलियों–सी स्थिर

नीरव हॅसती वारदातों का क्रमः

जलते नगर

उभरते जंगल

सॉसों में बढ़ती

लपटों की आपाधापी

कील ठुंकी ऑखों में समय पढ़ता है

हाथों की भाषा

मैली रेखाओं में डूबती मानव लिपियों का इतिहास

मौन

मुखर।''[42]

4.14 **भाषाई अस्मिता और शैली**

समकालीन कविता की सबसे बड़ी देन यह है कि उसने बाह्य यथार्थ का तिरस्कार करके आत्मगत बोध की ही सत्य मानने वाले भाववाद को अस्वीकार किया है। यह काव्यधारा न केवल यथार्थ के बोध की नई युक्तियॉ विकसित करने में सक्षम हुई है, बल्कि उसने यथार्थ के विभिन्न रूपों और स्तरों को एक साथ काव्य–विषय बनाया है। सूक्ष्म स्तर पर प्रेम की संवेदना और परिवार के रिश्ते से लेकर व्यापक स्तर पर शोषण–सांप्रदायिकता–साम्राज्यवादी हस्तक्षेप तक यथार्थ का इतना बड़ा दायरा काव्य की विषयभूमि में परिवर्तित हुआ है कि एक बार फिर यथार्थ का विस्तार और संवेदना का विस्तार हिन्दी कविता की शक्ति बनकर प्रकट हुआ है। ''1985 के बाद भूमंडलीकरण एक ओर, अर्थनीति में उदारीकरण : दूसरी ओर सांस्कृतिक जीवन में प्रतीकात्मक और नुमाइशी भारतीयता, एक ओर विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से कर्ज लेकर कॅप्यूटर–क्रांति और बाज़ार क्रांति का सूत्रपात करना तथा दूसरी ओर विदेशों में आयोजित संस्कृतिविहीन भारत महोत्सवों की श्रृंखला और रामजन्म भूमि का ताला खोलकर मंदिर–मस्जिद विवाद के द्वारा

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की भूमिका तैयार करना। दूसरे शब्दों में हमारी राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक एकता को गंभीर संकट में डालने वाली दोनों प्रवृत्तियॉ – भूमंडलीकरण और सांप्रदायिकता – साथ–साथ बढ़ी हैं।''[43]

समाज में फैली अनैतिकता एवं मूल्यहीनता को ये कवि दर्शाते हैं। इस प्रक्रिया में इंसान द्वारा पीछे छोड़ गए उनके आत्मिक संबंधों की रागात्मकता को शब्दों में बांधकर, देहाती जीवन के विरल दृश्यों को पाठकों के सामने लाते हैं। जिसमें मानवीय संबंधों के विभिन्न तलों का चित्रण होता है व अपने परिवेश से उसके नैसर्गिक एकरूपता को दिखाते हैं। समकालीन कविता मानवीय संबंधों का पोषण कर इंसान को अपने मूल से जुड़े रहने और अपनी संस्कृति की सही पहचान करने में उसकी सहायता करता है। कवि लीलाधर मंडलोई कहते हैं–

''सुदूर पश्चिम में फेंका हुआ प्रकाश बिंब

नर्मदा इस दूर दृश्य में ईंगुर से उछाहती

पास कहीं ऑखों में सहसा उभरतीं

मंदिर की पुरानी घंटियॉ सेंदूर में लत–पत

जिसके बेतरतीब नाद घुलते

कहीं दूर गायी जाती रूॅझाती की पवित्रता में''[44]

1980 के बाद की हिन्दी कविता में भाषा एवं शब्द प्रयोग का बड़ा ध्यान दिया गया है। भूमंडलीय बाज़ारवादी शब्दावलियों का त्याग कर मानव की सहज प्रकृति एवं देहाती शब्दों का अधिक प्रयोग किया गया

है। भारत की संस्कृति उसके लोक में बसा है। अतः समकालीन कविता में लोक जीवन से शब्दों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों को ग्रहण किया गया है। भारतीय ग्रामीण परिवेश से उन शब्दों को ग्रहण किया गया है जिसका अस्तित्व आज लगभग मिट गया है। हर कवि को अपने द्वारा अनुभव किए हुए सत्य की अभिव्यक्ति हेतु भाषा की आवश्यकता होती है। भाषा ही एक ऐसा साधन है जो प्रत्येक युग के परिवर्तन, प्रगति, नवीनता, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों और उनके विघटन को दिखाने में समर्थ होता है और शिल्प अनुभूति के कलात्मक प्रकाशन में प्रयुक्त सुनियोजित शब्द समूह है, अर्थात् कवि के भावों के संप्रेषण के लिए जिन उपादानों को ग्रहण किया जाता है, वे शिल्प कहलाते हैं। समकालीन कविता भारत की सांसकृतिक अस्मिता को बचाए रखने हेतु मनुष्य के भावों के चित्रण के लिए देशी शब्दावलियों का अधिक प्रयोग किया है। प्रकृति के हर छोटे–बड़े अंगों को इन कवियों ने अपनी कविता में मनुष्य के साथ, उसकी स्मृतियों में, उसके सहचर के रूप में दिखाया हैं। इनमें स्मृतियों के चिह्न अधिक दिखाई देते हैं।कवि राजेश जोशी कहते हैं–

''पानी की आवाज भी पारदर्शी और तरल लगती थी

बह कर समुद्र की तरफ जाती आवाज़ों में

पहाड़ से उतरकर आने की आवाजें भी शामिल थीं

उसके गिरने में उसके उछलने की आवाज शामिल थी

उसकी कई आवाज़ों में एक आवाज़

उसके छत से टपकने की भी थी

टपके की जगह पर जब कोई बरतन रख दिया जाता था

तो उसमें छन्न

.....

की एक आवाज और जुड़ जाती थी

.....

मॉ की आवाज उसमें बार–बार सुनाई देती थी।''[45]

समकालीन कविता में प्राकृतिक बिम्बों का प्रयोग खूब हुआ है। यह बिम्ब प्रयोग जीवन के सहजगामी क्रियाकलापों के साथ साथ हुआ है। कवि विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कहते हैं–

''अभी–अभी तो आया हूॅ

और अभी अभी वसंत भी आया है

इस घाटी में

देखो किरणों में कैसी खिली है

यह सतरंगी घाटी

अभी तो बहुत कुछ कहना चाहता हूॅ

झरने की तरह बहना चाहता हूॅ।''[46]

समकालीन कविता में संवाद एवं संबोधन की शैली का प्रयोग हुआ है तथा इसमें कथात्मक शैली का भी प्रयोग हुआ है। इससे समकालीन

कविताओं में निरन्तर पाठकों से सजीव बातचीत संभव होती है। इससे पूरी कविता में सजीवता आ जाती है। लोक कला हो या लोक गीत इनमें एक कथा होती है जिसमें साधारण इंसानों की सुख दुख को प्राकृतिक उपादानों की सहायता से प्रस्तुत किया जाता है। समकालीन कविता ने इस प्रवृत्ति को आत्मसात कर अपने कलेवर में वैसी ही कथा व संगीत को विशेष स्थान दिया है। वह इंसान की संवेदना को जगाना चाहती है। समकालीन कविता ने संवाद शैली का प्रयोग किया है। कवि प्रयाग शुक्ल कहते हैं–

''क्या वह तुमने बुना था कवि?

हर बार बुनते हो

जब कुछ पकड़ते हो,

या आ जाता

काम हर बार

जाल वह

पुराना ही?''[47]

कवि संवाद आम आदमी से करते हैं। समाज के विकृतियों के खिलाफ उन्हें आगाह करते हैं। कवि विष्णु खरे कहते हैं–

''डॉक्टरों मुझे और सब सलाह दो

सिर्फ यह न कहो कि अपने हार्ट का ख्याल रखें और

गुस्सा न किया करें आप–

क्योंकि गुस्से के कारण आई मृत्यु मुझे स्वीकार्य है

गुस्सा न करने की मौत के बजाए।''[48]

समकालीन कविता में कथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। कवि कुमार अंबुज कहते हैं–

''पिछले कई सालों से मैं बाज़ार नहीं गया था

इधर कुछ पैसा हाथ आया एरिअर्स का

लगातार दो दिनों की छुट्टी आई कई दिनों बाद

तो लगा बाज़ार जाने लायक है तबीयत

एक रोमांच में बाज़ार गया मैं।''[49]

कथात्म शैली का प्रयोग कवियों ने आम आदमी के जीवन साहचर्य को दर्शाने, शोषण एवं अत्याचार का चित्रण करने तथा भूमंडलीकरण के दुष्प्रभाव से मिटती देहाती दुनिया एवं उसमें बसने वाली आत्मीयता को दिखाने के लिए किया है। कवि सुदीप बैनर्जी कहते हैं–

''भोपाल आ बसे हमारे मोहल्ले में

ऐसा वादा नहीं था, इरादा भी नहीं था

इस शहर की रूह है बडा तालाब

भारत भवन के नीचे की सड़क पर

रात–बिरात चीते मिल जाते हैं।''[50]

समकालीन कविता में संबोधन शैली का भी प्रयोग हुआ है। कवि हेमंत कुकरेती कहते हैं–

''तुम्हारी भाषा में लिखा

कोई नाटक नहीं है हम

शब्द हैं जिसे तुम मार नहीं सकते

हर बार लौटे हैं हम ज़िन्दगी के उत्सवों में

जो तुमने बहुत कम रहने दिए हैं।''[51]

समकालीन कविता की भाषा कभी आक्रामक रही है, तो कभी संवेदना को जगाने हेतु स्मृतियों में भटकती सी दिखाई पड़ती है। वह कभी बाज़ार की मार से पीड़ित सर्वहारा एवं किसानों के दुख से दुखी होती है तो कभी जीवन के क्षणों में छोटी–छोटी खुशियों से खुश होती हैं। वह इंसान को आगाह करती है कि संस्कृति के क्षीण होने से कैसे मानवीय संबंधों की आत्मीयता मिटती जा रही है। समकालीन कविता ने बिम्बों के प्रयोग में न सिर्फ देहाती जीवन और प्रकृति के रूपों को लिया है बल्कि, मिथकीय, पौराणिक, व ऐतिहासिक संदर्भों को भी लिया है। समकालीन कविता का प्रतीक विधान भी व्यापक है। कवि पंकज चतुर्वेदी कहते हैं–

''एक ऐसे समय में

जब आकाश में चीलें मंडरा रही हैं

और हर खोह के लिए एक अदृश्य मुनादी है

कि उसमें हाथ डालने वाले इंसान की

खाल खींच ली जाएगी।''[52]

कवि भारत यायावर कहते हैं–

''कौन थे वे लोग?

छाती तक लम्बी रक्त सनी

जीभ लपलपाते

सांसों से बारूदी दुर्गंध छोड़ते

नज़रों में

खंजरों की खूनी चमक लिये

पैरों में लोहे के बूट पहने

कौन थे वे लोग?''[53]

सन् 1980 से 2000 तक कालखण्ड में बहुत सारे उल्लेखनीय कवि एवं उनकी कविताएँ हैं, जैसे – 'हम जो देखते हैं'–मंगलेश डवराल, 'दो पंक्तियों के बीच'–राजेश जोशी, 'पुतली में संसार'–अरुण कमल, 'सब कुछ होना बचा रहेगा'–विनोद कुमार शुक्ल, 'शब्द और शताब्दी'–विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, 'सड़क पर चुपचाप'–प्रभात त्रिपाठी, 'संक्रांत'–कैलाश वाजपेयी, 'तत्पुरूष'–अशोक वाजपेयी, 'पत्थर की बैंच'–चन्द्रकांत देवताले, 'बहने और अन्य कविताएँ'–असद जैदी, 'हुआ

कुछ इस तरह'–भगवत रावत, 'लौटता हूँ उस तक'–आग्नेय, 'यहाँ कहाँ थी छाया'–प्रयाग शुक्ल, 'मगर एक आवाज़'–लीलाधर मंडलोई, 'अनुभव के आकाश में चाँद'–लीलधर जगूड़ी, 'इतना कुछ'–गंगा प्रसाद विमल, 'उनींदे की लोरी'–गिरिधर राठी, 'दासत्व से उबरो'–नरेन्द्र मोहन, 'अभी, बिल्कुल अभी'–केदारनाथ सिंह आदि।

4.15 निष्कर्ष

समकालीन कविता ने हमेशा जन सामान्य के जीवन संघर्ष पर बल दिया है। 1980 के बाद जो बदलाव समकालीन कविता में आया है वह आज भी बरकरार है। यह बदलाव सकारात्मक है और पीड़ित जनों के जीवन के बड़े हिस्से को अपने में संजोया है। 1980 के बाद समकालीन कविता के प्रमुख कवि गण हैं – अरुण कमल, उदय प्रकाश, मदन कश्यप, लीलाधर मंडलोई, मंगलेश डबराल, सुदीप बैनर्जी, स्वप्निल श्रीवास्तव, पंकज चतुर्वेदी, प्रयाग शुक्ल, कात्यायनी, अनामिका, विनोद कुमार शुक्ल, दिनेश कुमार शुक्ल, कैलाश वाजपेयी, जितेन्द्र भाटिया, भारत यायावर, हेमंत कुकरेती, यतीन्द्र मिश्र, एकांत श्रीवास्तव, आग्नेय, राजेश जोशी, ज्ञानेन्द्रपति, विष्णु खरे, कुमार अंबुज, भगवत रावत, असद जैदी, प्रभाव त्रिपाठी, कुमार विकल आदि ।

समकालीन कवियों ने साम्राज्य विरोधी कविताएँ रची हैं। इसने व्यवस्था के शोषण तंत्र को उजागर करने और साधारण जन की पीड़ाओं को चित्रित करने के लिए प्रतीकों को जीवन के हर कोने से लिया है। साधारण से साधारण वस्तुओं व जीवन संदर्भों को भी इस के लिए लिया गया है।

इस भूमंडलीकृत बाज़ारवादी व्यवस्था में समकालीन कविता ने मनुष्य की सामाजिकता और उसकी मानवीयता को बचाने के लिए अपनी भरपूर कोशिश को जारी रखा है। यह भारत की संस्कृति की अस्मिता को बचाने की कोशिश है। यह भारत की सांस्कृतिक अस्मिता और उसके लोक पक्ष को पाठकों के सामने रखते हुए बाजारवादी–विघटनकारी शक्तियों के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर मुखरित करते हुए कविता की सामाजिक सार्थकता को बरकरार रखती है, क्योंकि समकालीन कवि यह जानते हैं कि वे चुनौतियों के बीच खड़े हैं, वह उम्मीद और निराशा के बीच खिंची महीन रेखा पर खड़े हैं। अतः उन्हें हर पल संघर्षरत रहना है।

समकालीन कवि हमारी संस्कृति के स्वत्व को बचाये रखना चाहते हैं। हमारे देश की ग्रामीणता, प्रकृति, लोकतांत्रिक भावना, उदार एवं सहिष्णुता पूर्ण दृष्टिकोण, समन्वयात्कता, अहिंसा, धर्म निरपेक्षता, स्त्री के प्रति आदर, लोकचेतना, पारिवारिक गरिमा, स्नेह, साहोदर्य, लोमंगल की कामना आदि सांस्कृतिक विरासत के प्रति कवि चिंतित हैं। जब भी भारतीय मूल्यों के सामने संकट आये हैं उसके खिलाफ सशक्त प्रतिरोध समकालीन कवियों ने खड़ा कर दिया है। वैश्वीकृत युग में होने वाले अपसंस्कृतिकरण का संपूर्ण विरोध करते हुए देश की सांस्कृतिक महिमा एवं गरिमा को कायम रखने का सशक्त आग्रह समकालीन कवियों ने अपनी–अपनी कविताओं के माध्यम से किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एकांत श्रीवास्तव – कविता का आत्मपक्षा, पृ सं –29
2. मंगलेश डबराल – आवाज़ भी एक जगह है, पृ सं –65
3. मदन कश्यप – नीम रोशनी में, पृ सं–26
4. पंकज चतुर्वेदी – एक संपूर्णता के लिए, पृ सं –20
5. विनोद कुमार शुक्ल – सब कुछ होना बचा रहेगा, पृ सं –27
6. अशोक वाजपेयी – घास में दुबका आकाश, पृ सं –24
7. अशोक वाजपेयी – घास में दुबका आकाश, पृ सं –40
8. अशोक वाजपेयी – घास में दुबका आकाश, पृ सं –90
9. विश्वरंजन (संपादन) – कविता के पक्ष में, पृ सं –79
10. मदन कश्यप – नीम रोशनी में, पृ सं–79
11. ज्ञानेन्द्रपति – कवि ने कहा, पृ सं –24
12. कुमार अंबुज – क्रूरता, पृ सं –21,22
13. राजेश जोशी – नेपथ्य में हॅसी, पृ सं –23
14. राजेश जोशी – नेपथ्य में हॅसी, पृ सं –35
15. राजेश जोशी – दो पंक्तियों के बीच, पृ सं –54,55
16. गगन गिल – एक दिन लौटेगी लड़की, पृ सं –24
17. मंगलेश डबराल – कवि का अकेलापन, पृ सं–49
18. मदन कश्यप – नीम रोशनी में, पृ सं–20
19. स्वप्निल श्रीवास्तव – ताख़ पर दियासलाई, पृ सं – 25

20.सच्चिदानंद सिंहा – भूमंडलीकरण की चुनौतियॉ , पृ सं –33,34

21.वही, पृ सं –34

22.स्वप्निल श्रीवास्तव – ताख़ पर दियासलाई, पृ सं –28

23.स्वप्निल श्रीवास्तव – ताख़ पर दियासलाई, पृ सं –58

24.भगवत रावत – निर्वाचित कविताएं, पृ सं –14

25.ज्ञानेन्द्रपति – कवि ने कहा, पृ सं –106

26.ज्ञानेन्द्रपति – कवि ने कहा, पृ सं –105,106

27.लीलाधर मंडलोई – हिन्दी कविता : 1980 के बाद, वागर्थ, पृ सं –16

28.राजेश जोशी –दो पंक्तियों के बीच, पृ सं –95

29.उदय प्रकाश – रात में हारमोनियम, पृ सं – 53

30.चन्द्रकांत देवताले – पत्थर की बैंच, पृ सं –60

31.मंगलेश डबराल – लेखक की रोटी, पृ सं –146

32.कुमार विकल – संपूर्ण कविताऍ, पृ सं –111

33.अजय तिवारी – साहित्य का वर्तमान, पृ सं –22

34.अरुण कमल – नये इलाके में, पृ सं –23

35.स्वप्निल श्रीवास्तव – जिन्दगी का मुकदमा, पृ सं–9,10

36.मंगलेश डबराल – आवाज़ भी एक जगह है, पृ सं –58

37.अरुण कमल – अपनी केवल धार, पृ सं –88

38.लीलाधर मंडलोई – हिन्दी कविता : 1980 के बाद, वागर्थ, पृ सं –35

39.यतीन्द्र मिश्र — अयोध्या तथा अन्य कविताएँ, पृ सं —33,34

40.चन्द्रकांत देवताले — लकड़बग्घा हँस रहा है, पृ सं —13

41.अशोक वाजपेयी — तत्पुरूष, पृ सं —47

42.बलदेव वंशी — उपनगर में वापसी, पृ सं —67

43.अजय तिवारी — साहित्य का वर्तमान, पृ सं —21

44.लीलाधर मंडलोई — मगर एक आवाज, पृ सं —19

45.राजेश जोशी — दो पंक्तियों के बीच, पृ सं —31

46.विश्वनाथ प्रसाद तिवारी — कवि ने कहा, पृ सं —21

47.प्रयाग शुक्ल — यहाँ कहाँ थी छाया, पृ सं —14

48.विष्णु खरे — सब की आवाज के पर्दे में, पृ सं —41

49.कुमार अंबुज — क्रूरता, पृ सं —25

50.सुदीप बैनर्जी — इतने गुमान, पृ सं —36

51.हेमंत कुकरेती — चलने से पहले, पृ सं —32

52.पंकज चतुर्वेदी — एक संपूर्णता के लिए, पृ सं —12

53.भारत यायावर — बेचैनी, पृ सं —19

Pradeep Raj P. “ Search for the cultural identity of India in contemporary Hindi poetry (With special reference to 1980-2000)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2017

उपसंहार

मनुष्य की संवेदना अत्यंत व्यापक एवं गहरी है। सामाजिक जीवन के आरम्भ से अब तक मनुष्य ने जो भी स्वप्न देखे हैं, जो भी कार्य किए हैं, जो भी उसके अनुभव से जुड़े हैं, उन सभी को उसने शब्दबद्ध करने का प्रयास किया है। यह प्रक्रिया पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलती आई है। ये सब उसके संस्कार के हिस्से हैं। मानव की इसी संस्कृति को हर काल में कला एवं साहित्य के जरिए अभिव्यक्त करने का प्रयास उसने किया है। यही सच्ची अभिव्यक्ति है। भारत की संस्कृति का परिचायक उसके इतिहास, परंपरा, साहित्य व नैतिक मूल्य हैं। समकालीन कविता ने इसी संस्कृति के विभिन्न रूपों का चित्रण किया है। इस प्रयास में उसने भारत के लोक जीवन को लेकर उसके विभिन्न रूपों का चित्रण कविता में किया है। भद्र एवं आभिजात्य भाषा एवं शब्दों को त्यागकर ग्रामीण शब्दावलियों, लोकोक्तियों, मुहावरों को लेकर कविता में प्रयोग किया है।

मनुष्य ने आज तक जो भी सृजनात्मक कार्य किए हैं वह सब उसकी संस्कृति है। अपने जीवन की जटिलताओं, विषमताओं तथा अंतर्विरोधों से निरंतर संघर्षरत होकर ही मनुष्य ने अपनी संस्कृति का निर्माण किया है। भारत की संस्कृति ने ऐसी ही विकासात्मक प्रक्रिया से होकर सार्वभौमिक रूप ग्रहण किया है। इसकी ग्रहणशीलता, सह–अस्तित्व, समन्वयशीलता, गत्यात्मकता, धर्म–निरपेक्षता आदि गुण इसे एक वैश्विक लोकतांत्रिक संस्कृति बनातेहैं। भारत की संस्कृति के विकास में अनेक जातियों का योगदान रहा है। आर्य, द्रविड़, युनान, शक, कुषाण, आभीर, गुर्जर, हूण, अरब आदि जातियों के विविधोन्मुखी जीवन

व्यापार ने भारत की संस्कृति का निर्माण किया है। इसकी विकास प्रक्रिया में मुख्यधारा की परंपराओं के साथ–साथ स्थानीय या लौकिक परंपराओं की भूमिका अपरित्याज्य है। अतः निरंतर बदलते सामाजिक परिस्थिति और मूल्यों को मद्देनज़र रखते हुए यह एक नयी और उन्नत आस्था की खोज है जो मानवीय जीवन पद्धतियों को एक साकार रूप देती है।

भारत की संस्कृति की पहचान उसकी सार्वभौमिकता एवं धर्मनिरपेक्षता में है। यही कारण है कि यहॉ अन्तर–सांस्कृतिक आदान–प्रदान देख सकते हैं। भारत की संस्कृति की कई विशेषताएँ हैं – प्राचीनता, समन्वयशीलता, सहिष्णुता, ग्रहणशीलता, अध्यात्मिकता, गत्यात्मकता, विश्व कल्याण की भावना, अहिंसा, परोपकारपरायणता, त्याग भावना, सदाचार पालन, सर्वांगीणता, धर्म–निरपेक्षता आदि। भारत की संस्कृति की पहचान उसके मूल्य, परंपरा तथा इतिहास द्वारा किया जा सकता है। समकालीन कविता खासकर सन् 1980 के बाद की कविता ने इसे अधिक महत्व दिया है।

सन् 1980 और 2000 के बीच की कविताओं में सांस्कृतिक तत्वों का प्रयोग बदलते सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परिस्थिति के परिणामस्वरूप हुआ है। भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न उपभोगवादी संस्कृति ने अपसंस्कृति को जन्म दिया। भारत की राजनीति मूल्यहीन हो गई। यहॉकी सामाजिक परिस्थिति बदत्तर होती गई। जनता में संवेदनशीलता खत्म होती गई। भ्रष्टाचारी नेताओं के कारण देश की आर्थिक स्थिति बदत्तर होती गई। इस मूल्यच्युति के विरुद्ध समकालीन कवियों ने भारत की सांस्कृतिक घटकों को अपनी कविता में शामिल कर

जनता को नष्ट हो रही संवेदनशीलता के बारे में बताने का प्रयास किया है। यह वह काल है जब हिन्दी कविता अपने वादों के खोल से बाहर आकर सामान्यजन से जुड़ने का प्रयास कर रही थी। भद्र समाज के अन्तर्मन की फैंटसीकरण से हटकर साधारण जनता के सुख–दुख से जुड़ रही थी। भ्रष्ट राजनीति, भूमण्डलीकरण से उत्पन्न उपभोगक्तावादी संस्कृति, साधारण जनता का शोषण, सांप्रदायिकता आदि स्थितियों के कारण इस काल की कविता को बाहर और भीतर से सक्षम होना था। अतः समकालीन कविता ने प्रतिरोध का मार्ग अख्तियार ली।

1970 के दशकों में बेरोजगारी, शोषण, किसानों की आत्महत्या, भुखमरी आदि से कांग्रेस सरकार के विरुद्ध जन आक्रोश उमड़ रही थी। नक्सलवादी आन्दोलन का उदय होने से सरकार को सर्वत्र संघर्ष का सामना करना पड़ा। विरोधी पार्टियों के जुलूस, छात्र संगठनों का आंदोलन, किसान आन्दोलन आदि देश के कई हिस्सों में बड़े पैमाने परआन्दोलन हुए।सरकार ने इन आन्दोलनों को लाठी और गोलियों से दमन किया। इन सब के फलस्वरूप 1975 में आपातकाल की घोषणा हुई। तत्पश्चात् खालिस्तान की मॉग, सिक्खों का दमन, ब्लू स्टार ऑपरेशन, प्रधानमंत्री इंदिरा गॉधी की हत्या, सिक्ख हत्याकांड, सोवियत यूनियन का विघटन, आर्थिक तंगी, उदारीकरण, बाबरी मस्जिद का खण्डन, इस्लाम व हिन्दू उग्रवादियों का पुनरुदय, सांप्रदायिक दंगे, काला धन आदि घटनाओं से भारतीय समाज को बहुत बड़ा झटका हुआ। संवेदनहीनता, मूल्यहीनता, अपसंस्कृति से भारतीय सामाजिक व सांस्कृतिक घटन में दरारें आ गई। इस सांस्कृतिक च्युति के विरुद्ध हिन्दी कविता ने प्रतिरोध खड़ा किया।

हिन्दी कविता अपने उत्पत्ति काल से ही मूलतः प्रगतिशील रही है। इसने हमेशा समाज के साथ, जनता के साथ जुड़ने का प्रयास किया है। हिन्दी कविता के इतिहास पर नज़र डालने से यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि उसमें पुरानी व्यवस्था का विरोध और जनतंत्र की तरफ बढ़ने की ख्वाहिश है। हिन्दी कविता ने भारत की बदलती सामाजिक परिस्थिति के साथ–साथ अपने शब्द, प्रतीक, बिम्ब एवं घठन को तथा अपने अभिव्यक्ति के तौर–तरीकों को बदला है। हिन्दी कविता अपने आदिकाल से ही बदलती सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप अपने को ढाला है। यह विषयगत व शैलीगत दृष्टि से विविधोन्मुखी रही है। इसने हमेशा सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में छिपे शोषक तत्वों का विरोध किया है। एक प्रतिपक्ष की भूमिका निभाई है। शोषित जनता के स्वर से स्वर मिलाया है। शोषक वर्ग के षड्यंत्र का पर्दाफाश किया है। हिन्दी के इस प्रगतिशील परंपरा से जुड़कर समकालीन कविता ने सामाजिक पक्षधरता की रचना की है। इसने मध्यवर्ग का छद्मपूर्ण व्यवहार, उच्च वर्ग का शोषण तंत्र, निम्न वर्ग की पीड़ा एवं संघर्ष, रागात्मक संबंधों के विस्थापन का दुःख, बच्चों और स्त्रियों के प्रति चिंता, लोकधर्मी परंपरा के प्रति आस्था और राजनीति के कुत्सित चेहरे का चित्रण कर अपनी सामाजिक, राजनीति एवं सांस्कृतिक दायित्व का निर्वहन किया है। इसने लोक भाषा एवं उसके शब्द भंडार का प्रयोग कर शहर और अंचल में रहने वाले सामान्य जनता के जीवन संघर्ष को स्वर दिया है।

यह कविता वैचारिक प्रतिबद्धता में विश्वास रखती है। यह समय और संस्कृति से निरन्तर मुठभेड़ करती है और इंसान में विश्वास, उम्मीद,

संघर्ष की भावना एवं सपने देखने की अनवरत इच्छा को बनाए रखना चाहती है। यह आधुनिक बोध को अपने सही मायने में चित्रित करता है। समकालीन कविता कल्पनाप्रवण जीवन दृष्टि से सृष्टि को प्रतिगामी शक्तियों से सुरक्षित रखने को प्रतिबद्ध है। इसने भाषा के मृद स्वाद को पुनर्जीवित कर कविता के घठन को कविता के वैचारिक पक्ष का सहचर बनाने का प्रयास किया है। समकालीन कविता में एक सहज निडरता, गहराई और संघर्ष का एक व्यापक फलक दिखाई पड़ता है जो विचारों की व्यापक पड़ताल से निर्मित हैं। यह जीवन बाहरी तामझाम और छद्म को दिखाकर जनता को भ्रमजाल में फॅसाना नहीं चाहती बल्कि यह इन सबसे साधारण जनता को मुक्त कर सच को पूरी समग्रता से और गहराई से चित्रित कर मानव संघर्ष को एक नई राह देना चाहती है।

अतः यह भारत की सांस्कृतिक अस्मिता को बचाए रखना चाहती है। सन् 1980 के बाद की हिन्दी कविता में इसी सांस्कृतिक अस्मिता को आवाज़ देने की कोशिश हुई है। इसने बाज़ार के तामझाम से दूर जीवन की नैसर्गिकता को प्रस्तुत किया है। साम्राज्यवादी शक्तियों के उपभोक्तावादी षड्यंत्र का अनावरण किया है। इसने मानवीय संबंधों के महत्व पर जोर दिया है। भारत की संस्कृति के मूल तत्वों को ग्रहण कर उसकी गरिमा को बचाए रखना समकालीन कविता का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व है। यह संस्कृति आभिजात्य न होकर लोकधर्मी है। साधारण जनता के जीवन संघर्ष को चित्रित करने वाली है। समकालीन कविता जीवन की जड़ों को पुष्ट करने वाली कविता है। वह भारतीय परंपरा के जर्जर मूल्यों को त्यागकर मानवीय व सकारात्मक मूल्यों को ग्रहण करते हुए समय के साथ उसमें नयापन जोड़ने की कोशिश भी करती है।

इन कविताओं में वंचितों के स्वर सुने जा सकते हैं। यह दमनकारी सत्ता के शोषण और फासीवाद के विरुद्ध एक बुलन्द आवाज़ है। यह कभी किसानों व मज़दूरों के जीवन का आत्मसंगीत गाती है तो कभी लोक भाषा के मिठास में खेतों–खलिहानों, अंचल के पगडंडियों से गुज़रती है। यह कविता प्रकृति का वर्णन करती है परन्तु यह वर्णन कोरी प्रकृति का चित्रण न होकर उसमें मनुष्य की रागात्मक संबंधों का चित्रण भी है। समकालीन कवि यह पहचानते हैं कि भारत की संस्कृति उसके गॉवों में बसी है, अतः वे लोक संगीत के धुन में मग्न होकर मनुष्य और प्रकृति के साथ घुलमिल कर इंसान के सुख–दुख का राग अलापते हैं।

सन् 1980 और 2000 के बीच बहुत सी ऐसी रचनाएँ आईं जो भारत की संस्कृति की सही पहचान कर उन तत्वों को अपनी कविताओं के जरिए साधारण जनता के संघर्ष, उसके जीवन के सुख–दुख के बीच चित्रित किया है। 'मगर एक आवाज', 'नये इलाके में', 'नीम रोशनी में', 'नेपथ्य में हॅसी', 'शब्द और शताब्दी', 'अनुभव के आकाश में चॉद', 'ताख पर दियासलाई', 'दो पंक्तियों के बीच', 'आवाज़ भी एक जगह है', 'पत्थर की बेंच', 'डूबा सा अनडूबा तारा' आदि कुछ उदाहरण हैं। समकालीन कवि हमेशा अपने परिवेश के प्रति सजग हैं, इसलिए वह सत्ता के हर दुष्चक्र से वाकिफ हैं और इसके विरुद्ध जनता को जाग्रत करता रहते हैं।

भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप कईं विघटनवादी शक्तियों का उदय हुआ। बाज़ारवादी संस्कृति पनपने लगी। हमारे परंपरागत मूल्यों का क्षरण होने लगा। मनुष्य में संवेदना, इंसानियत, भाईचारा, अहिंसा,

सहअस्तित्व, धर्म एवं जातिगत समभाव नष्ट होने लगे। इंसान केवल अपनी व्यक्तिगत दायरे में सिमटने लगा। उदारवादी अर्थव्यवस्था ने भारत के ग्रामीण उद्योगों को नष्ट कर दिया। खेती और कुटीर उद्योगों को छोड़ लोग शहरों में मज़दूर बनकर आने लगे। व्यक्ति अपने समाज और प्रकृति से दूर विस्थापित हो गया। जन सामान्य की यही पीड़ा एवं उसके दैनंदिन संघर्ष को समकालीन कवियोंने अपनी कविता में अभिव्यक्ति दी हैं। संवेदनहीनता एवं मूल्यहीनता के इस समय में समकालीन कविता ने व्यक्ति के घर, परिवार एवं मूल परिवेश को लेकर कविताएँ रची हैं। समकालीन कविता में भारत की सांस्कृतिक अस्मिता उसकी भाषा, शैली, बिम्ब, प्रतीक आदि में प्राप्त होती हैं।

सन् 1980 के बाद कविता की शैली, विषयवस्तु एवं शब्द योजना में बदलाव आए। कविता का केन्द्र उसके पूर्ववर्ती काव्य प्रवृत्ति – राजनीति, से हटकर गॉव, लोक संस्कृति, प्रकृति, पारिवारिक संदर्भ आदि में आ गई। कवि की चुनौतियॉ बढ़ने लगीं– भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, सांप्रदायिकता, विघटनवाद, देशी भाषा का अवमूल्यन आदि। शोषक तत्व बाज़ार के तामझाम में छुपकर, साधारण लोगों को इसके छद्म आकर्षणों में फँसाकर, उनका शोषण कर रही हैं। समकालीन कविता मनुष्य की संवेदना को जगाकर उसे इस कृत्रिम दुनिया से बाहर लाना चाहती है, वह दुनिया जहॉउसका अस्तित्व, उसके मूल्य सब खोखले बन जाएँगे और व्यक्ति बाज़ार का दास बन जाएगा। इस परिस्थिति में यह इंसान की आत्मीयता एवं आत्मविश्वास को नष्ट कर उसे महज़ अंधी उपभोगी वस्तु में तब्दील कर देता है। अतः समकालीन कविता भारत की संस्कृति के मूल सिद्धांतों एवं मूल्यों के सहारे मनुष्य को इस अवमूल्यन से बचाना

चाहती है। वह अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने के लिए तैयार है। सन् 1980 और 2000 के बीच भारत के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थिति में जो बदलाव आए हैं, उसका सीधा प्रभाव तत्कालीन कविता पर पड़ा है और इस परिवर्तन को समकालीन कवियों ने बारीकी से समझकर अपनी कविताओं में सही तरह से इसकी अभिव्यक्ति की है। इस काल के प्रमुख कवि हैं – लीलाधर जगूड़ी, मंगलेश डबराल, गिरिधर राठी, राजेश जोशी, कुमार विकल, अरुण कमल, सुदीप बैनर्जी, असद जैदी, भगवत रावत, चन्द्रकांत देवताले, प्रयाग शुक्ल, ज्ञानेन्द्रपति, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, कैलाश वाजपेयी, अशोक वाजपेयी, मदन कश्यप, कुमार अम्बुज, पंकज चतुर्वेदी, लीलाधर मंडलोई, एकांत श्रीवास्तव, बद्रीनारायण, हेमंत कुकरेती, विनोद कुमार शुक्ल, नीलाभ, बोधिसत्व आदि। आज बाज़ारवाद एवं सांप्रदायिकता भारतीय समाज एवं संस्कृति को खण्डित कर रही है। इसके खिलाफ समकालीन कविता एक प्रतिरोध के रूप में तथा सशक्त विकल्प के रूप में खड़ी है, साथ ही हमारे मूल्यों, सांस्कृतिक परंपरा एवं विरासत के प्रति वे जागरूक भी हैं।

Pradeep Raj P. “ Search for the cultural identity of India in contemporary Hindi poetry (With special reference to 1980-2000)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2017

संदर्भ ग्रन्थ सूची

काव्य संग्रह

1. अरुण कमल – अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 2000
2. अरुण कमल – नये इलाके में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1996
3. अशोक वाजपेयी – घास में दुबका आकाश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1994
4. अशोक वाजपेयी – तत्पुरूष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1989
5. असद जैदी – सरे शाम (असद जैदी के तीन कविता संग्रह), आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्र सं – 2014
6. आग्नेय – लौटता हूँ उस तक, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्र सं –1997
7. उदय प्रकाश – रात में हारमोनियम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1998
8. कुमार अंबुज – क्रूरता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1996
9. कुमार विकल – संपूर्ण कविताए, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्र सं– 2010
10. कैलाश वाजपेयी – डूबा सा अनडूबा तारा,भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, प्र सं – 2008

11. कैलाश वाजपेयी – संक्रान्त, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, प्र सं – 2000
12. चन्द्रकांत देवताले – लकड़बग्घा हॅस रहा है, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 2000
13. चन्द्रकांत देवताले – पत्थर की बैंच, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं– 1996
14. ज्ञानेन्द्रपति – कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 2000
15. पंकज चतुर्वेदी – एक संपूर्णता के लिए, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्र सं – 1998
16. प्रयाग शुक्ल – यहॉ कहॉ थी छाया, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, प्र सं – 1999
17. बलदेव वंशी – उपनगर में वापसी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1988
18. भगवत रावत – निर्वाचित कविताऍ, साहित्य उपक्रम, दिल्ली, प्र सं – 2004
19. भारत यायावर – बेचैनी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1990
20. मंगलेश डबराल – आवाज़ भी एक जगह है, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 2000
21. मदन कश्यप – नीम रोशनी में, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्र सं – 2000
22. यतीन्द्र मिश्र – अयोध्या तथा अन्य कविताऍ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 2000

23. राजेश जोशी – दो पंक्तियों के बीच, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 2000
24. राजेश जोशी – नेपथ्य में हॅसी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1994
25. लीलाधर जगूड़ी – अनुभव के आकाश में चॉद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1994
26. लीलाधर मंडलोई – मगर एक आवाज़, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्र सं – 1999
27. डॉ. विनय – पुरर्वास का दण्ड, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1975
28. विनोद कुमार शुक्ल – सब कुछ होना बचा रहेगा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1992
29. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 2010
30. विष्णु खरे – सब की आवाज के पर्दे में, राधाकृष्ण, प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1994
31. सुदीप बैनर्जी – इतने गुमान, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1997
32. सुधामा पाण्डेय धूमिल – संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1972
33. सुनीता जैन – गंगा तट देखा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1998

34. स्वप्निल श्रीवास्तव – जिन्दगी का मुकदमा, पुनर्नवा प्रकाशन, हापुड़, प्र सं – 2010
35. स्वप्निल श्रीवास्तव – ताख़ पर दियासलाई, संभावना प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1992
36. हेमंत कुकरेती – चलने से पहले, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 1996

आलोचना ग्रंथ

1. अज्ञेय (संपादक) – तार सप्तक, ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1943

2. अजय तिवारी – साहित्य का वर्तमान, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 2002

3. एकांत श्रीवास्तव – कविता का आत्मपक्षा, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्र सं – 2006

4. डॉ. ओमप्रकाश – प्राचीन हिन्दी काव्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1971

5. डॉ. किरण टण्डन – भारतीय संस्कृति, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, प्र सं – 2008

6. के एल शर्मा – भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन, रावत पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्र सं – 2006

7. गजानन माधव मुक्तिबोध – भारत : इतिहास और संस्कृति, कला निकेतन मंदिर, ग्वालियर, प्र सं – 1962

8. गोविन्दराम शर्मा – हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियॉ, आधार प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं. – 1967

9. जगदीश नारायण श्रीवास्तव – समकालीन कविता पर एक बहस, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र सं – 1978

10. देवेश ठाकुर – नयी कविता के सात अध्याय, संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्र सं – 1992

11. डॉ. नगेन्द्र (संपादक) – हिन्दी वड.मय : बसवीं शती, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र सं – 1972

12. डॉ. नगेन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेश्नल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र सं – 1973

13. डॉ. नामदेव उतकर – हिन्दी साहित्य की की युगीन प्रवृत्तियॉ, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, प्र सं. – 2002

14. नामवर सिंह – कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1968

15. नरेन्द्र मोहन – भारतीय संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 2011

16. डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय – अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, अभिरूचि प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 2000

17. प्रभा खेतान – भूमंडलीकरण : ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 2007

18. प्रभाकर क्षेत्रिय – हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका, नेश्नल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र सं. – 1995

19. डॉ. बहादुर सिंह – हिन्दी साहित्य का विकास, विवके पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, प्र सं – 1990

20. बिपन चन्द्र – आज़ादी के बाद का भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, प्र सं – 2002

21. डॉ. बैजनाथ पुरी – भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, प्र सं – 1995

22. मंगलेश डबराल – कवि का अकेलापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 2008

23. मंगलेश डबराल – लेखक की रोटी, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्र सं – 1998

24. डॉ. मनोज सोनकर – सत्तरोत्तरी हिन्दी कविता : संवेदना शिल्प और कवि, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, प्र सं – 1994

25. महर्षि कणाद – वैशेषिक मीमांसा – 1.12, भगवती देवी शर्मा (संपादक) – अध्यात्मिक प्रकाशन, उत्तर प्रदेश, प्र सं – 2011

26. महाभारत – आदि पर्व

27. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह – आधुनिक हिन्दी साहित्य, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 2000

28. प्रो. रघुवंश – मानवीय संस्कृति का रचनात्मक आयाम, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र सं – 1990

29. राकेश कुमार – उत्तर उपनिवेशवाद : चुनौतियॉ और विकल्प, शुभदा प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 2014

30. राजीव सक्सेना – कविता की कवितांतर, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाण, प्र सं – 2011

31. डॉ. रामकुमार वर्मा – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण लाल प्रकाशन, प्र सं – 1942

32. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, प्र सं. – 1929

33. डॉ. रामदरश मिश्र – आधुनिक हिन्दी कविता : स्रजनात्मक संदर्भ, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1986

34. रामस्वरूप चतुर्वेदी – हिन्दी काव्य संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र सं – 1986

35. रामधारी सिंह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1956

36. वाचस्पति गैरोला – भारतीय संस्कृति और कला, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, प्र सं – 1973

37. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – हिन्दी साहित्य का अतीत – प्रथम भाग, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1986

38. डॉ. विश्वबंधु शर्मा – साठोत्तरी हिन्दी कविता, मंथन पब्लिकेशन, रोहतक, प्र सं – 1989

39. विश्वरंजन (संपादन) – कविता के पक्ष में, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 2010

40. डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय – भारतीय जीवन और संस्कृति, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, प्र सं – 1977

41. डॉ. शम्भुनाथ सिंह (संपादक) – नवगीत दशक 2, आधार प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1977

42. डॉ. शशिप्रभा कुमार – भारतीय संस्कृति : विविध आयाम, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1996

43. डॉ. शिवकुमार शर्मा – हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियॉ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं. – 1965

44. श्यामचन्द्र कपूर – हिन्दी साहित्य का इतिहास, ग्रन्थ अकादमी प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1991

45. श्यामचरण दुबे – परंपरा और परिवर्तन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 2001

46. श्यामचरण दुबे – समय और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1996

47. श्यामवृक्ष मौर्य – समाज दर्शन और राजनीति, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र सं–2006

48. सच्चिदानंद सिंहा – भूमंडलीकरण की चुनौतियॉ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 2000

49. सच्चिदानन्द सिन्हा – संस्कृति और समाजवाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं – 2004

50. डॉ. सरिता माहेश्वर – प्रगतिवाद प्रयोगवाद नयी कविता, अप्रतिम प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1991

51. सोती विरेन्द्र चन्द्र – भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, राजपाल एंड संस, दिल्ली, प्र सं – 1998

52. डॉ. हरदयाल – आधुनिक हिन्दी कविता, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1993

53. हरिदत्त वेदालंकार – भारत का सांस्कृतिक इतिहास, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, प्र सं – 1952

54. हरिवंश तरुण – भारत की राष्ट्रीय एकत, ज्ञान गंगा प्रकाशन, दिल्ली, प्र सं – 1991

<u>अंग्रेज़ी ग्रंथ</u>

1. अरविन्द एन दास – इंडिया इंवेंटड् – ए नेशन इन दी मेकिंग, मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं –1992

2. पंडित जवहरलाल नेहरू – दी डिस्कवरी ऑफ इंडिया, दी सिगनेट प्रेस, कलकत्ता, प्र सं – 1946
3. प्रकाश चन्द्र उपाध्याय – दी पॉलिटिक्स ऑफ इंडियन सेक्यूलरिज़म, क्रिटिकल क्वेस्ट, नई दिल्ली, प्र सं –1992
4. विंसेट ए स्मिथ – द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लंडन, प्र सं – 1981

पत्र–पत्रिकाएँ

1. फेयर ऑब्सॉबर – 16 फरवरी 2012
2. बद्रीनारायण – वागर्थ, दिसम्बर 2012
3. मजीर हुसैन – दी हिन्दू, 6 दिसम्बर 2012
4. लीलाधर मंडलोई – वागर्थ, दिसम्बर 2012
5. समकालीन भारतीय साहित्य (पत्रिका) – मार्च–अप्रैल 2010
6. सैफुद्दीन अहमद – मीडिया एशिया, वोल्यूम 37, वर्ष 2010

वेबसाईट

1. www.globalsecurity.org, 21 July 2016
2. www.wikipedia.com